ISSN : 2321-3922
जनवरी -2024
RNI-BIHHIN05394
वर्ष-11 अंक-35

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जनवरी–मार्च – 2023

प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

RNI No. : BIHHIN05394/2015

ISSN - 2321-3922

वर्ष–11, अंक–36

श्री दयानन्द जायसवाल
संस्थापक–सह–प्रधान संपादक

डॉ. विजय कुमार सिंह
संयोजक

श्रीमती अनिता जायसवाल
संरक्षक

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक मंडल

अश्विनी प्रजावंशी
सम्पादक मंडल

श्रीमती छाया पाण्डेय
संस्थापक सदस्य

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
संस्थापक सदस्य

कार्यालय प्रभारी

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

सुमित भारती
कोलकाता
8757689138

सौरभ भारती
दिल्ली
8699170450

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक :

श्री दयानन्द जायसवाल

संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं
समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल

मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
जनवरी–मार्च – 2024

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अप्रैल 2024 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	5
समीक्षा	'आधा आदमी' आदमी के अस्तित्व को अभिव्यक्त करती कविताएँ	डॉ. नीलोत्पल रमेश	6
कविता	स्वर्ग का अंतिम उतार (उपन्यास)	डॉ. दुर्गा प्रसाद अग्रवाल	8
कविता	डॉ. दीपमालिका मर्म	गौरीशंकर वैश्य	9
समीक्षा	समसामयिक परिवेश का आईना 'हा वसंत'	डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल	10
समीक्षा	चुप्पियों के बीच : जनसरोकार की ग़ज़लें	नीरज नीर	14
समीक्षा	प्रसाद के नाटक : इतिहास, कल्पना और काव्य	दयानंद जायसवाल	15
ग़ज़लें		विज्ञानव्रत	16
समीक्षा	आगे से फटा जूता	अंजनी श्रीवास्तव	17
कविताएँ	लिखने से पहले, क्योंकि मैं सूर्य हूँ	सागर तोमर	18
कविता	आया वसंत	प्रिया देवांगन 'प्रियू'	18
समीक्षा	जनचेतना की संवाहक : गाँधी दौलत देश की	डॉ. प्रदीप उपाध्याय	19
कविताएँ	बही वाम नदिया की धारा, काया लटक गई	अनामिका सिंह	20
कविता	मेरी माँ भी रानी है	डॉ. नीना छिब्बर	20
समीक्षा	सबसे उपेक्षित वर्ग : गुलाबी कलियाँ	मनोरमा पंत	21
समीक्षा	एक और दिन का इजाफा : कविता संग्रह	युगल किशोर प्रसाद	23
ग़ज़लें		विकास	24
आलेख	हिन्दी मराठी नाटकों में नारी चित्रण	डॉ. रामा दूधमांडे	25
कविता	क्षितिज की ओर	किशोर अग्रवाल	27
आलेख	हिन्दी कहानी का नया परिदृश्य	डॉ.अवधेश कुमार चन्सौलिया	28
कविता	सपने भरते नहीं	लीला श्रीवास्तव	29
आलेख	समकालीन हिन्दी कहानियों में चित्रित किन्नर विद्रोह	रामेश्वर महादेव वाढ़ेकर	30
कविता	दो वर्ष पहले	नेतलाल यादव	31
आलेख	तुलसीकृत 'मानस' में मूल्य चेतना	डॉ. अमर सिंह बधान	32
कविता	एक हुए जैसे चाँद–चकोरी	समीर उपाध्याय	33
आलेख	बालक की प्रथम पाठशाला ही परिवार है	शंकरलाल माहेश्वरी	34
कविता	किताबें	संजय वर्मा 'दृष्टि'	35
आलेख	संत पलटू दास और उनका दर्शन	गोपाल भारती 'महेसी'	36
आलेख	विद्यापति के काव्य में सामाजिक चेतना	डॉ. देवेन्द्रनाथ साह	40
आलेख	सूफी कवि और एकेश्वरवाद, अद्वैतवाद एवं सर्ववाद	वसीम राजा	41
लघुकथा	खंडित संबंध	वसंत राघव	42
चिंतन	कवि नागार्जुन में अर्जुन का विक्षोभ–रस	डॉ. कृष्ण भावुक	43
चिंतन	लघु पत्रिकाएँ और उनके प्रकाशन का संकट	शैलेश चौहान	46
व्यंग्य	श्रद्धांजलि सभा में शोध और गृहकार्य	सीताराम गुप्ता	47
संस्मरण	कंसोल रूम	प्रतिभा विश्वकर्मा	48
कहानी	ज़ख़्म बना नासूर	आलोक भारती	49
कहानी	सवालिया आँखें	भगवती प्रसाद द्विवेदी	51
क्षणिकाएँ		केदारनाथ सविता	52

बेटी

बेटी भोगती है पीढ़ियों का दर्द
धर्म की साजिश
संस्कृति का झूठ

बेटी में समाई है घर की फटेहाली
भाई की बेकारी, बाप की खाँसी
माँ की बीमारी

बेटी को रौंदती है उम्र की बात
अफवाहों की आँधी, समाज का ताना
परचून की दूकान

बेटी झेलती है शराब की गंध
भेड़िये का पंजा, गिद्ध की चोंच
बिल्ली की घात

बेटी पर गुजरती है, सास की संस्कृति
ननद की चाल
परिवेश का परायापन

बेटी जानती है दहेज की बात
महाजनी हिसाब, सिलण्डर का गैस
किरासन तेल
सलाई की काठी।

डॉ. गिरिजाशंकर मोदी

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

साहित्य ही हमारी वाणी की तपस्या है और यही तपस्या एवं साधना जीवन का यथार्थ है, प्रेयस की अनुभूति है तथा श्रेयस की उपलब्धि है। इसी सच्चाई में वाक् और अर्थ संपृक्त होते हैं और इसी संगम में तत्त्व एवं तथ्य के युगल का साक्षात्कार होता है; सत्यं, शिवं एवं सुन्दरम् का आविर्भाव होता है। यूँ तो साहित्य की प्रत्येक विधा में वैचारिक प्रतिबद्धता का सवाल अनेक बार उठता रहा है। शुद्ध सर्जनात्मक साहित्य भी प्रतिबद्धताओं से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता; क्योंकि प्रत्येक रचना में रचनाकार की उपस्थिति रहती है, जिसमें उनका अपना रुझान, सोच, दर्शन एवं संवेदन होता है। साहित्य का सृजन मनुष्य की चेतना से, जीवन और जगत के योग से, अनुभूति और सोच के गर्भ से तथा जीवन और दर्शन के दाम्पत्य से होता है और यह पर्यावरण के संदर्भ में पलता है। इसके सृजन की प्रक्रिया निरुद्देश्य नहीं होती; स्वान्तः सुखाय के अतिरिक्त सामाजिक संदर्भ से यह कभी अछूता नहीं रह सकता। साथ ही साहित्यिक कला और संस्कृति समाज की विभिन्नताओं, भाषाओं और साहित्यिक परंपराओं को सम्मिलित करती है। यह समृद्धशाली और विविध साहित्यिक विरासत का निर्माण करती है, जो समाज को एकता और समरसता के आदर्श के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसी तरह समाज भी साहित्य को अपनी पहचान का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा मानता है और इसे संरक्षित रखने का प्रयास करता है। साहित्य और समाज के इस संघर्ष के माध्यम से हमारा समाज समृद्ध, सजीव और समरसता से भरा रहेगा।

साहित्य की अवधारणा वास्तव में देखा जाए, तो साहित्य एक स्वायत्त आत्मा है और उसकी सृष्टि करनेवाला भी ठीक से यह नहीं बता सकता कि उसके रचे साहित्य की गूंज कब और कहाँ तक जाएगी। तात्पर्य यह है कि यदि साहित्य समाज में नैतिक सत्य की चिंता है, तो यह समाज की दूरगामी वृत्तियों का रक्षक तत्त्व भी है। विद्वानों के एक वर्ग के अनुसार साहित्य को आदर्शवादी होना चाहिए, तो दूसरे वर्ग के अनुसार यथार्थवादी। यथार्थवादियों का तर्क है कि जीवन में निराशा एवं कष्ट का साम्राज्य होता है। अतएव जीवन की इस स्थिति में आशा व सुख का चित्रण अस्वाभाविक प्रतीत होता है। दूसरी ओर आशावादियों का कहना है कि जीवन में निराशा और कष्ट का साम्राज्य नहीं होता, बल्कि उसमें आशा व सुख का समावेश होता है। इसलिए दोनों के तर्क में यही भिन्नता है। बावजूद इसके हमारा अतीत व स्मृतियों के प्रति एक विशेष दायित्व होता है, उन्हें सहेजने और सँवारने का दायित्व साहित्यकारों का होता है; किन्तु अपनी विरासत के प्रति हमारा दायित्वबोध अत्यन्त क्षीण व धूमिल होता जा रहा है। साहित्य और साहित्यकारों को लेकर इस व्यथा और वेदना को राष्ट्रीय स्तर पर बाँटने और विस्तृत करने की आवश्यकता है; क्योंकि हमारी साहित्यिक अस्मिता में अतीत का गौरव, वर्तमान का संकल्प और भविष्य का सपना समाहित है। हमारे संत–साहित्य में जो निर्गुण और सगुण का, अध्यात्म का, ईश्वर की भक्ति थी, जो मुक्ति का उद्घोष करता रहा, रूढ़ियों और बेड़ियों को तोड़ता रहा, वही मनोवेग राष्ट्रीय नवोन्मेष के युग में राष्ट्रभक्ति का एक नया चैतन्य प्रवाह बनकर भारत के मर्म और मानस को ओतप्रोत कर गया। उस पूरे युग में साहित्यकार की चिंता, कवि का दुःख–दर्द, उसका उत्सव, अस्मिता और गौरव, वर्तमान की चुनौती और भविष्य की आकांक्षाएँ भारतीय साहित्य का सर्वस्व बनकर प्रतिष्ठित हुए।

आज के इस दौर में बाजारवाद ने हमारी संघर्ष चेतना को कुंद कर दिया है, जिसका प्रभाव आज की भूमंडलीय बाजारी संस्कृति पर कलात्मक चासनी में लिपटा प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। ऐसे में साहित्यकारों को युगीन जीवन के ह्रासोन्मुख मूल्यों के विरुद्ध अपने साहित्य–सृजन के माध्यम से उदात्त जीवनमूल्यों की स्थापना करनी होगी। सम्प्रति मानव देश, काल, परिस्थिति, जाति, वर्ण, सम्प्रदाय, वर्ग एवं विविध, इकाइयों में बँटकर सर्वत्र विषमता की खाई खोदने में दिलचस्पी ले रहा है। उसकी नकारात्मक मानसिकता ने हताशा एवं निराशा की स्थिति लाकर खड़ा कर दिया है। ऐसी विषम परिस्थिति में मानवमूल्यों को पुनः स्थापित करने की महती आवश्यकता है। यह कार्य मूल्यपरक साहित्य सृजन द्वारा ही संभव है, तभी संवेदनात्मक विश्वबंधुत्व की भावना जागरित की जा सकती है; क्योंकि जीवन की समग्रता का आकलन और मूल्यांकन किसी–न–किसी रूप में साहित्य–सृजन में देखा गया है। साहित्यकार का यह सदैव प्रयास रहे कि वह सार्वभौमिक और सार्वकालिक साहित्य–सृजन करे, यही साहित्य–सृजन का ध्येय है।

साहित्य के लिए जीवनादर्शों का स्थापन, नैतिक मूल्यों के प्रति आग्रह, राष्ट्रीयता के प्रति संवेदनशीलता, धर्म–निरपेक्षता की प्रवृत्ति, सांस्कृतिक जागरूकता, सकारात्मक वैचारिकता, लोक कल्याण की भावना एवं रचनात्मक वृत्ति आदि प्रवृत्तियों का समाहार है। सम्प्रति आदर्शोन्मुख यथार्थ के स्थान पर कठोर यथार्थवाद, नीतिपरकता के स्थान पर आधुनिकता, समष्टिगत परिवेश के स्थान पर व्यक्तिगत परिवेश की झलक देखने को मिल रही है, जिसके कारण हिन्दी साहित्य समाज के हाशिए पर आता जा रहा है। अधिकांशतः आज अभिनंदन ग्रंथ भी स्वयं के प्रयास से प्रकाशित कराए जा रहे हैं। अतएव हिन्दी साहित्य का समाज के हाशिए पर आना कोई अप्रत्याशित घटना नहीं होती है। कभी–कभी तो संपादकों के समक्ष लेखन सामग्री का नितांत अभाव रहता है, जिसकी पूर्ति साहित्यिक ईमानदारी दूर हो जाती है। पर 'सुसंभाव्य' के साहित्यकार जीवन संवेदनाओं को गंभीरता और तीव्रता से उद्भाषित करते हैं तथा कुशलतापूर्वक तलस्पर्शी अभिव्यक्ति देते हैं, जिसके मूल में जीवन चेतना होती है।—सधन्यवाद एवं सुसंभाव्य के पाठकों और रचनाकारों को नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ!

समीक्षा

'आधा आदमी' : आदमी के अस्तित्व को अभिव्यक्त करती कविताएँ

डॉ. नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर, बुध बाजार
गिद्दी ए, जिला हजारीबाग, झारखंड
मोबाइल–9931117537

'आधा आदमी' अशोक कुमार का पहला काव्य संग्रह है। इसके पूर्व में कवि की अनेक कविताएँ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। इस संग्रह में शामिल अधिकांश कविताएँ आदमी की पहचान को लेकर लिखी गई हैं, जिसमें कवि चिंतित है कि आदमी में आदमीयत पूर्ण रूप से नहीं रह गई है, उसकी पहचान
का संकट उत्पन्न हो गया है। यही कारण है कि आदमी आधा ही रह गया है। कविता जिस तरह से लगातार लिखी जा रही है, उससे कविता के अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो गया है। फेसबुकिया कवियों की बाढ़–सी आ गई है। कहीं का ईट, कहीं का गारा के सहारे दो चार लाइनें लिख लेनेवाले ये कवि अपने को महाकवि समझने लगते हैं। इनकी उछल–कूद देखते ही बनती है। ऐसे समय में अगर कोई कविता को बचाने के लिए लिखता है, तो वह काबिलेतारीफ है, ऐसे ही कवि हैं अशोक कुमार। 'आधा आदमी' कविता संग्रह में अशोक कुमार की 65 कविताएँ संकलित हैं। इस संग्रह में 'आधा आदमी' शीर्षक से एक कविता है। आदमी की बात तो अनेक कविताओं में आई है, जिससे आदमी की मुकम्मल पहचान बन सके। यह बात स्पष्ट है कि कवि को आदमी के अस्तित्व को लेकर चिंता है। 'खोयी हुई मुस्कानों का शहर' कविता में कवि मुस्कान के व्यवसायीकरण की बात करता है यानी अब मुस्कान भी मुफ्त नहीं मिलनेवाली है। यह तो बीते जमाने की बात हो गई। जब कोई एक दूसरे से मिलता था, तो उसके चेहरे पर मुस्कुराहट दिखाई पड़ती थी। अब वही मुस्कुराहट
व्यवसाय में बदल गई है, शो केसों में बंद हो गई है, यही व्यावसायिकता अब भूमंडलीकरण हो गई है। साफ–साफ बात यह है कि–

'खोई हुई मुस्कानों के शहर में
एक बात और अलग थी
कोई था जो ठठा कर हँसता था
शायद वह कोई और था
और वह किसी काँच की दीवार के पीछे
अपनी मुस्कान और पेट लिए नहीं खड़ा था
वह मुस्कानों की कालाबाजारी का कोई व्यापारी था
उसकी अपनी ऊँची दीवारें थीं
वही मुस्कुराता था
वही ठठा कर हँसता था।''

'कवि ऐसे समय का' कविता में कवि कहता है कि आज कविताएँ जिनके लिए लिखी जा रही हैं, उन तक नहीं पहुँच रही
है। जिन तक कविताएँ पहुँच रही हैं, वे उनके लिए हैं ही नहीं। कविताओं के अस्तित्व को लेकर कवि चिंतित है कि कविताएँ छपती तो हैं, लेकिन बिकती नहीं हैं, जबकि अब कविताओं का तेवर बदल गया है। कवि लिखता है–

''कवि हूँ ऐसे समय का जिसमें
कविता एक लंबी दूरी की यात्रा कर थकी थकी लगती है
ऐसे समय में कविताएँ जिन लोगों के लिए लिखी गई थीं
उनके बीच नहीं पढ़ी जा रही थीं
और जहाँ पढ़ी जा रही थी
वहाँ वे नहीं थे
जिनके समय के भूसे की जुगाली की जा रही थी वहाँ।''

'अधूरे' शीर्षक कविता के माध्यम से कवि सभी के अधूरेपन की बात करता है। इस संसार में कोई पूर्ण नहीं है। आस्तिकों में थोड़ा नास्तिक और नास्तिकों में थोड़ा आस्तिक के गुण बचा रहता है। यह दुनिया भी पूर्ण नहीं है। सब कुछ अधूरा ही है। कवि इसी अधूरेपन को यों व्यक्त करता है–

''मैंने पुरुषों में पुरुष तलाशा
स्त्रियों में स्त्रियाँ
पुरुष किंचित स्त्रैण निकले
स्त्रियाँ थोड़ी मर्दानी।''

'मेरे गाँव की नदी' कविता के माध्यम से कवि अपने गाँव की नदी के बहाने अपनी स्मृतियों को गाँव में ले जाता है। फिर इस नदी से जुड़ी हुई अनेक किंवदन्तियों के सहारे उसके अतीत और वर्तमान को जोड़ना चाहता है, ताकि आनेवाली पीढ़ी इससे पूरी तरह से वाकिफ हो सके। वह यह भी बता देना चाहता है कि इस नदी में चीनी मिलों के मलवे ही अब बहते हैं। इसकी स्वच्छता और पवित्रता अब नहीं रही। वह लिखता है–

''लेकिन एक कहावत थी उसके बारे में
कि जब राम सीता जा रहे थे वनवास
और सीता मैया को जब लगी प्यास
लक्ष्मण ने अपने बाण से विधा था धरती की छाती
और वहीं से निकली थी वह नदी
जो अब हमारे गाँव से बहती थी
और बुझाती थी लोगों और डांगरों की प्यास।''

'जूते' शीर्षक कविता में कवि समाज के कई यथार्थ से पाठकों का परिचय कराना चाहता है। 'जूते' शीर्षक से कवि की दस कविताएँ हैं, जिसमें ये बातें स्पष्ट होकर निकली हैं–

''नए जूते पैरों को काटते हैं
क्या मित्रता पुरानी होकर मुलायम होती है
जूतों की तरह।'' (जूते 4)

''जूते बदहाल होने तक
मुझे शर्मसार नहीं होने देते
वे मुस्कुराते हैं तब तक
और मेरे फटे मौजों के
इकलौते राजदार होते हैं–ताउम्र।'' (जूते 10)

'आधा आदमी' शीर्षक नामित कविता में कवि आदमी के आधा होने की बात करता है। वह कहता है कि आदमी अपनी आधी शक्ति श्रम शक्ति को दे दिया है, तभी तो वह पूर्ण होकर काम करता है। यही कारण है कि आदमी के हाथ की डोर फिसल रही थी–

''मशीन आधा आदमी हो गया था
और खुश था
आदमी आधा ही मशीन रह गया था
और खुश था
आधे की भरपाई की प्रक्रिया जारी थी
मशीनों का अश्वमेध का घोड़ा छुट्टा घूम रहा था
अश्वशक्ति का दंभ लिए
लगाम की रस्सी फिसल रही थी
कहीं कोई डोर आदमी के हाथों से छूट रही थी।''

'पिता' कविता के माध्यम से कवि ने अपनी माँ और पिता की अहमियत को बतलाया है। दोनों का अस्तित्व एक दूसरे से अलग नहीं है। दोनों के रहने भर से ही बच्चे की सारी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। वे दोनों हैं तो अलग–अलग, पर लगते नहीं हैं। कवि लिखता है–

''पिता! तुम अलग लगते हो
पर नहीं हो अलग
नहीं हो कतई जुदा
मां की पोरों से अपनी ममतामयी सुगंध से
हम सने हुए थे
तुम्हारे बलिष्ठ और चौड़े सीने में था पसरा हुआ एक
लंबा चौड़ा बरगद
जिसके नीचे हम सह और बच सकते थे
जिंदगी की गर्मी और धूप से।''

'माया महल' कविता के माध्यम से कवि ने महाभारत काल में मायासुर द्वारा निर्मित माया–महल की चकाचौंध की ओर ध्यान दिलाया है। उस समय के परिवेश और वातावरण से पाठकों को अवगत कराते हुए कवि आज की स्थिति में उसकी सार्थकता की तलाश करता है। कवि लिखता है–

''मायासुर को क्यों
ऐसे शिल्प की आवश्यकता थी
कि जहाँ फर्श सुसज्जित हो
वहाँ पानी हो
मायासुर को क्यों निर्देशित किया गया
कि जहाँ पानी हो
वह कठोर फर्श दिखे।''

''अनुवादक कविता के माध्यम से कवि ने अनुवादक की परेशानियों और समस्याओं की ओर ध्यान दिलाया है। अनुवादक को यह परेशानी होती है कि वह जिसका अनुवाद करता है, उसका मूल बचा रहे, संप्रेषणीयता बची रहे, तभी तो पाठक हू–ब–हू रचना से परिचित हो सकेंगे। अनुवादक की व्यथा को कवि ने यों व्यक्त किया है–

''वह व्यथा की कथाओं का जब करता है अनुवाद
एक गैर भाषा से अपनी भाषा में
तो चौकन्ना हो जाता है कुछ ज्यादा ही
उसे डर सताता है उस वक्त
कहीं व्यथा को व्यक्त करता एक शब्द
उन अनगिन लोगों के साथ धोखा न कर जाएँ
जो व्यथा के गीत गाते वक्त
उसे हृदय में मौजूद करते हैं
और आंखों में छलकाते हैं।''

'जिंदगी की भाषा और लय' कविता के माध्यम से कवि ने आदमी के अस्तित्व को बचाए रखने की बात की है। आदमी का जीवन परेशानियों से भरा पड़ा है। यही कारण है कि वह सही आदमी तलाश नहीं कर पा रहा है। कवि लिखता है–

''शाम होते ही अपने घर में
दुबका हुआ आदमी
अपने सपनों के संग सोता है
अगली होनेवाली सुबह के साथ
तालमेल बिठानेवाले
शब्दों की तलाश में
सही अक्षर सही हरफ
सही शब्द सही जुमलों को जन्म देनेवाली
भाषा की लय में।''

'दुरुह समय का सच' कविता के माध्यम से कवि समय की दुरुहता को व्यक्त करना चाहता है। यह समय बहुत ही कठिन होते जा रहा है। इस कठिन समय में सब कुछ कठिन हो गया है, उसमें समय भी शामिल है। वह अपनी सच्चाई के साथ आज का यथार्थ वर्णन करना चाहता है। कवि लिखता है–

''पके हुए समय में किसी मन को तप कर निखरना था
आवेग की परिधि से बाहर
देह को हाड़ की कठोरता और मांस की
मांसलता के लबादे को उतार फेंकना था
वासना को बाजार की तंग गलियों से गुजर कर
तलाशनी थी एक महफूज जगह
लालसा को खोजनी थी एक सँकरी गुफा
अपना केंचुली छोड़ने के लिए।''

'आधा आदमी' में अशोक कुमार ने समय के तेवर को पकड़ने की कोशिश की है। समय को पकड़कर लिखनेवाला कवि ही समय के साथ चल सकता है, अन्यथा वह कहीं का नहीं रह जाता है। जिस कवि ने समय से साक्षात्कार कर लिया है, उसकी कविता समय की धारा के साथ गुजरते चली जाती है। कवि की संवेदना उस स्तर पर समय की नब्ज को पकड़कर चलती दिखाई पड़ रही है 'आधा आदमी' में। ये कविताएँ पाठकों का अपनी ओर ध्यान खींचने में भी सफल हुई हैं। 'आधा आदमी' के आमुख में प्रसिद्ध आलोचक और संपादक आशुतोष कुमार ने ठीक ही लिखा है–''आधुनिक कविता न तो भावावेश की अभिव्यक्ति है, न भाषा का खेल मात्र। वह न तो विचारधारा का पद्यानुवाद है, न आदर्श समाज या राष्ट्र के निर्माण की प्रेरणा। वह सिर्फ अपने समय का ध्यान साक्षात्कार है। एक ऐसा साक्षात्कार, जिसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह किस हद तक समय के तेवर को बदल सकता है?''

'आधा आदमी' कविता संग्रह, कवि अशोक कुमार, प्रकाशक रश्मि प्रकाशन, लखनऊ 226023 मूल्य 170रु., वर्ष 2019 ई. पृष्ठ 112

समीक्षा

स्वर्ग का अंतिम उतार
(उपन्यास)

डॉ. दुर्गा प्रसाद अग्रवाल,
ई–2/211, चित्रकूट,
जयपुर–302021.
मोबाइल–9079062290

अपने दो ही तो शौक है–पढ़ना और (संगीत) सुनना। खूब मोटी–मोटी किताबें भी पढ़ी हैं, लेकिन जबसे यह मुआ कोरोना हावी हुआ है, किसी भी काम में मन नहीं लग रहा है। फुर्सत खूब है, लेकिन पढ़ने में मन नहीं लगता है। कोई किताब बड़े मन से पढ़ना शुरू करता हूँ, लेकिन बहुत जल्दी मन उचट जाता है, जिन किताबों को पढ़ना जरूरी है, उनका अम्बार जमा होता जा रहा है। मित्रों के आगे शर्मिंदा होना पड़ रहा है, लेकिन मन के आगे लाचार हूँ। यही हाल संगीत सुनने का भी है, लेकिन इसी उखड़ी मनःस्थिति में आज जब एक उपन्यास हाथ में लिया, तो जैसे एक चमत्कार ही हो गया। न केवल यह कि जबसे यह कोरोना काल शुरू हुआ है, पहली बार किसी किताब को पूरा पढ़ा, इससे भी बड़ी बात यह कि एक ही बैठक में पढ़ लिया और ऐसा करने में मेरी अपनी कोई भूमिका नहीं थी. यह किताब का ही चमत्कार था कि उसने मुझसे खुद को पढ़वा लिया। किताब है लक्ष्मी शर्मा का हाल में प्रकाशित उपन्यास 'स्वर्ग का अंतिम उतार।'

लक्ष्मी जी हिंदी की जानी–मानी कथाकार है और उनका इससे पहले प्रकाशित उपन्यास 'सिधपुर की भगतणें' और कहानी संग्रह 'एक हँसी की उम्र' खूब चर्चित और प्रशंसित रहे हैं। इनके अलावा भी उन्होंने काफी काम किया है। लक्ष्मी जी के लेखन की सबसे बड़ी ताकत उनकी भाषा और चित्रण क्षमता है। उनकी भाषा में प्रवाह तो है ही, उनका शब्द चयन भी विलक्षण होता है और चित्रण तो वे कुछ इस तरह करती हैं कि आप उनको पढ़ते हुए देखने लगते हैं। उनके ये दोनों कौशल इस उपन्यास में जैसे अपने शिखर पर हैं। इसे पढ़ते हुए मुझे लगा, जैसे उन्होंने शिवानी से उनका सांस्कृतिक वैभव और स्वयं प्रकाश से उनका खिलंदड़ापन लेकर एक अनूठी भाषा रची है, जो केवल उनकी है और ये दो ही तत्त्व नहीं हैं इस भाषा में, यहाँ मालवी का आंचलिक स्वाद भी भरपूर है। मैं बिना किसी संकोच के कह सकता हूँ कि इस उपन्यास को इसके भाषा सौष्ठव के लिए भी पढ़ा जाना चाहिए।

लेकिन कोई भी कृति केवल भाषा के दम पर अपनी जगह नहीं बनाती है और अगर वह कृति उपन्यास हो तो उससे हमारी पहली अपेक्षा तो उसके कथा तत्त्व की होती है। इस उपन्यास की कथा बहुत सीधी–सरल है। कथा का केंद्रीय व्यक्तित्व छिगन एक आस्थावान निम्नवर्गीय भारतीय है। उसके जीवन की बड़ी साध है बद्रीनाथ की यात्रा। अपने बचपन में गाँव में उसने हसरत भरी निगाहों से बहुत लोगों को तीर्थयात्रा करके लौटते और उनका मान बढ़ते देखा है, लेकिन उसकी अपनी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वह अपने बल बूते पर तीर्थ यात्रा कर सके। इसके बावजूद उसे इसका अवसर मिल जाता है, जिस अमीर परिवार के यहाँ वह चौकीदार की नौकरी कर रहा है, वह परिवार धार्मिक पर्यटन का कार्यक्रम बनाता है और अपने साथ इस छिगन को भी ले जाता है। ले जाने का स्पष्ट उद्देश्य यह है कि वह उनके पालतू कुत्ते गूगल की सेवा करने के साथ–साथ उनकी भी सेवा करेगा। साहब, मेम साहब, बेटी और बेटा–इन चार लोगों के साथ बस का ड्राइवर और उसका एक सहायक भी इस यात्रा में हैं। यात्रा होती है और कथाकार बहुत ही कुशलता के साथ हमें भी इस यात्रा में सहभागी बना लेती हैं। लेकिन यह तो इस कथा का एक आयाम है, असल में तो यह कथा अनेकायामी है। इस यात्रा में हम न केवल रास्ते की खूबसूरती का आनंद लेते हैं, यहाँ हमें मानवीय चरित्र के अनेक रंग भी देखने को मिलते हैं। निदा फाजली का वह शेर बेसाख्ता याद आता है–'हर आदमी में होते हैं दस बीस आदमी / जिसको भी देखना हो कई बार देखना।' पहले लगता है कि ड्राइवर और उसके साथी के मन में छिगन के प्रति कोई सद्भावना नहीं है, लेकिन आहिस्ता–आहिस्ता वे उससे जुड़े जाते हैं और उसी तरह साहब, मेम साहब और उनके बच्चों के अलग–अलग रूप सामने आते हैं। इस कथा से गुजरते हुए आप महसूस करते हैं कि व्यक्ति न पूरी तरह अच्छा होता है, न पूरी तरह बुरा। इसी यात्रा के दौरान जब ये लोग जानकीचट्टी पहुँचनेवाले हैं, तो उससे कुछ पहले इनकी बस का कूलेण्ट पाइप फट जाता है और मजबूर होकर इन्हें एक सामान्य गृहस्थ के काम चलाऊ गेस्ट हाउस में शरण लेनी पड़ती है। वहीं लेखिका उस गृहस्थ की सुंदर सुशील बेटी कंचन को सामने लाती है। छिगन की मेम साहब कंचन को देख करुणार्द्र हो जाती हैं और हम उनकी इस दयालुता से बहुत प्रभावित भी होते हैं, लेकिन कुछ आगे चलकर यह रहस्योद्घाटन होता है कि मेम साहब की यह करुणा अकारण नहीं, सकारण है। उन्हें उस लड़की में एक सस्ती सेविका नजर आई है और इस तरह लेखिका अमीरों की करुणा को बेनकाब कर देती है।

यात्रा कथा चलती है, लेकिन उसी के साथ छिगन की अपनी स्मृति यात्रा भी चलती रहती है। लेखिका बहुत ही कुशलता के साथ वर्तमान से अतीत में और अतीत से वर्तमान में आवाजाही करती है। जब वह अतीत में जाती है, तो वहाँ की कुछ कथाएँ भी हमें सुना देती हैं। इन कथाओं में चंदरी भाभी की कथा अपनी मार्मिकता में अनूठी है और सच तो यह है कि यह केवल चंदरी भाभी की कथा नहीं है, यह भारतीय स्त्री के जीवन की मार्मिक त्रासदी है। इसी तरह पहाड़ की बेटी जुहो की कहानी भी हमें भिगो देती है। लेखिका का कौशल इस बात में है कि उसने इन प्रासंगिक कथाओं को अपनी मूल कथा का अविभाज्य अंग बनाकर प्रस्तुत किया है।

लेखिका की सूक्ष्म दृष्टि से जीवन का कोई भी पहलू बच नहीं पाता है। यहाँ तक कि जब वह यह बताती है कि ड्राइवर गाड़ी में कौन–सा संगीत बजा रहा है, तब भी उसका सूक्ष्म पर्यवेक्षण हमारा ध्यान आकर्षित किये बिना नहीं रहता है। वे लोग गाड़ी में किनके गाने बजाते हैं? गुरु रंधावा, दलेर मेहंदी और सोना महापात्र के। और उसकी भाषा? बहुत बार तो यह एहसास होता है, जैसे गद्य में कविता ही रच दी गई है। दो–तीन अंश उद्धृत किये बिना नहीं रह सकता हूँ। देखें–

''अभी सूरज नहीं उगा है और भागीरथी के कुआरे हरे रंग में कोई मिलावट नहीं हुई है, वो अनछुई, मगन किशोरी–सी अपनी मौज में इठलाती दौड़ी जा रही है। नदी के पार एक हिरण का जोड़ा पानी पीने के बहाने उसके गाल छू रहा है।'' (पृ.63)

या यह अंश–''धारासार बरसते मेघों का रूप और नाद–सौंदर्य जितना मोहक होता है, उससे ज्यादा सम्मोहक होती है आसमान से बरस चुकी, लेकिन धरती पर आने के बीच में कहीं ठहर गई बूँदों की ध्वनियाँ और छवियाँ चीड़ की नुकीली पत्तियों के जाल के बीच से हवाई रोशनी के साथ

छम–छम छमकती बूँदें इठलाती परियों–सी उतरती हैं। किसी फूल की पंखुड़ी के अंग लगकर महक गई एक कामिनी–सी बूँद मद्धिम सुर के साथ पग धरती है, बड़ी देर से छत के किनारे ठहरी कुछ बड़ी बूँदे एक हुँकार के साथ पहाड़ी पत्थरों के किनारे नन्हें ताल में कूद पड़ती हैं और छोटा–सा भँवर बना के खो जाती है।''(पृ.82)

और यह भी देखिये–''रात की बारिश और बरफ रात को ही विदा ले गई है। जानकीचट्टी के पर्वतों पर बिछी बर्फ से गलबहियाँ किये उतरती धूप कुछ ज्यादा ही साफ और उजली है। उसने जरा–सा धूपिया पीला उबटन पास बहती जमना की श्यामल वर्णा देह पर भी मल दिया है, जिससे वो भी निखरी–निथरी हो गई है। ठण्ड अपना तेवर दिखा रही है, लेकिन यात्रियों की भीड़ में उसे कोई खास तवज्जो नहीं मिल रही।'' (पृ. 94) ऐसे मोहक वर्णन इस किताब में जगह–जगह है।

लेकिन कोई भी उपन्यास न तो केवल भाषा या वर्णन से बड़ा बनता है और न कथानक की रोचकता से। यहाँ भी अगर केवल इतना ही होता, तो यह उपन्यास भी एक सामान्य कथा रचना बनकर रह गया होता। इन सारे खूबसूरत मोहक और बरबस वाह निकलवा लेनेवाले प्रसंग वर्णनों–चित्रणों से गुजरते हुए हम बढ़ते हैं कथा के अंत की तरफ। कथा इतनी सहजता से आगे बढ़ रही है कि लगता है देव–दर्शन के साथ इसका समापन हो जाएगा। तेरहवें अध्याय तक यही लगता है, लेकिन चौदहवें अध्याय में प्रवेश करते ही हमारा सामना अप्रत्याशित अकल्पनीय से होता है। वह क्या है, यह बताकर मैं उस आनंद से आपको वंचित नहीं करूँगा, जो इसे खुद पढ़ने पर आपको मिलेगा। लेकिन अंतिम, सत्रहवें अध्याय में जब लेखिका अपनी कथा को समेटती है, तो हम एक बार फिर से उसके कौशल के मुरीद होने को विवश हो जाते हैं। बहुत सारे ब्यौरे जो बीच–बीच में आए हैं, यहाँ आकर अपनी सार्थकता प्रमाणित करते हैं और यहीं इस कथा में श्वान गूगल की उपस्थिति एक नया आयाम प्राप्त कर एकदम से इस कथा को बड़ा बना देती है। असल में जहाँ यह उपन्यास खत्म होता है, वहीं से आपके मन में एक कथा शुरू होती है और यही है इस उपन्यास की सबसे बड़ी ताकत। एक बहुत सामान्य कथा को इतना व्यापक आयाम दे देना लेखिका की सामर्थ्य का बहुत बड़ा परिचायक है।

लक्ष्मी शर्मा – लेखक, शिवना प्रकाशन, पी.सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड, सीहोर– 466001. प्रथम संस्करण 2020. पृ. 104 पेपरबैक मूल्यरू 150.00

कविता

दीपमालिका मर्म

गौरीशंकर वैश्य 'विनम्र'
117 आदिलनगर, विकासनगर
लखनऊ 226022
दूरभाष–9956087585

तमसो मा ज्योतिर्गमय, सारस्वत यगुधर्म
सद्प्रवृत्तियों से जुड़ा, दीपमालिका मर्म

वनवासी प्रभु रामसिय, बिता चतुर्दश वर्ष
घर लौटे साकेत जब, दीपक जले सहर्ष

मिट अँधेरा हृदय का, फैले दिव्यालोक
जनजीवन से दूर हो, भूख, रोग, भय, शोक

सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे सुखिनः सन्तु
जोड़े ज्ञान–प्रकाश से, स्नेहिल जीवन तंतु

पूजें सात्विक भाव से, लक्ष्मी और गणेश
धन–विवेक समरूप हों, लाएँ सुख संदेश

सिद्धि मिले संकल्प से, साधक दीप अनन्य
ज्योति हेतु बलिदान दे, करता जीवन धन्य

बाह्य तिमिर से भी सघन, अंतर्तम–अज्ञान
दोनों पक्ष प्रदीप्त हों, फले ज्ञान–विज्ञान

आतिशबाजी कर रही, धूप–प्रदूषण वृद्धि
क्षणभर के आनंद में, खो जाती धन–सिद्धि

दीप समुच्चय प्रकृति का, जीवन–कर्म सुमेल
ज्योति शिखा के तत्त्व प्रिय, मृदा, रूई, पवि, तेल

आत्मदीप से कीजिए, परम सत्य स्वीकार
धूर्त तिमिर छल से कभी, ले न सके प्रतिकार

दीप ज्योति को शत नमन, तम से देती मुक्ति
जीवन हो सौभाग्यप्रद, मिले प्रगति की युक्ति

सद्कर्मों की फसल–सा ज्योति–शिखा का तेज
रवि को मंगलकामना, दीप रहे हैं भेज।

समीक्षा

समसामयिक परिवेश का आईना– 'हा वसंत!'

डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग खडगपुर कॉलेज
खड़गपुर–721305

समाज में व्याप्त विद्रूपताओं के प्रति असंतोष से व्यंग्य का जन्म होता है। 'हास्य' और 'विनोद' व्यंग्य के साथ जुड़े रहते हैं। व्यंग्य की कटुता को दूर करने के लिए हास्य और विनोद का सहारा लिया जाता है। समाज में विसंगतियाँ और विद्रूपताएँ सदियों से स्थापित हैं। समय–समय पर अनेक कवियों, लेखकों और विचारकों ने खुलकर इसके खिलाफ आवाज उठाई है। लेखक शैलैन्द्र कुमार के अनुसार–''हिंदी साहित्य में व्यंग्य लेखन की परंपरा अति प्राचीन है। वस्तुतः इसका मूल संग्रह प्राचीन साहित्य में मिलता है। वैदिक साहित्य में सर्वप्रथम व्यंग्य का पुट मिलता है। समाज में व्याप्त विसंगतियों के कारण व्यंग्य की अवधारणा हुई है। हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम नाथों और सिद्धों के साहित्य में व्यंग्य दिखाई देता है, परंतु मूलतः व्यंग्य का अस्तित्व हमें कबीर के साहित्य से मिलता है। कबीर साहित्य में उपलब्ध व्यंग्य के मूल में समाज की विद्रूपताएँ ही हैं। सामाजिक विसंगतियाँ, शोषण, ऊँच–नीच, भेद–भाव आदि ऐसे सामाजिक पहलू हैं, जिनके कारण कबीर की वाणी प्रखर हुई है और वह व्यंग्य तक जा पहुँची है। कबीर के बाद छुटपुट व्यंग्य रचनाएँ होती रहीं, परंतु इसके पश्चात् इसका वास्तविक विकास बाबू भारतेंदु हरिश्चंद्र ने किया। उन्होंने तत्कालीन परिवेशगत विकृतियों को व्यंग्य का लक्ष्य बनाया।''

स्वतंत्रता पूर्व बालमुकुंद गुप्त, प्रेमचंद तथा निराला आदि की रचनाओं में भी हमें व्यंग्य का स्वरूप दिखाई देता है, जिसमें तत्कालीन परिवेश की वस्तुस्थिति का बोध होता है। ये रचनाकार भी सामाजिक विसंगतियों पर अपने व्यंग्य से खुलकर प्रहार करते हैं।

आजादी के बाद के अनेक साहित्यकारों ने समसामयिक विसंगतियों की अपने व्यंग्य–लेखन के माध्यम से कटु आलोचना की है, जिनमें हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी, लतीफ घोंघी, नरेंद्र कोहली, हरीश नवल, प्रेम जनमेजय, ज्ञान चतुर्वेदी, अशोक शुक्ल, रवीन्द्रनाथ त्यागी, शंकर पुणतांबेकर आदि प्रमुख हैं। वर्तमान समय में भी ऐसे अनेक व्यंग्यकार हैं, जिन्होंने समकालीन विसंगतियों का यथार्थ चित्रण किया है। इन व्यंग्यकारों में रामकिशोर उपाध्याय, स्नेहलता पाठक, पीयूष पांडे, निर्मल गुप्त, अशोक मिश्र, अलंकार रस्तोगी, सुशील सिद्धार्थ, शशिकांत सिंह 'शशि', डॉ. सुरेशकांत, आलोक पुराणिक, अनूप
शुक्ल आदि का अपना विशिष्ट योगदान है।

डॉ. पंकज साहा भी इस दौर के उन व्यग्यकारों की श्रेणी में आते हैं, जो वर्तमान परिवेश की विसंगतियों और विद्रूपताओं का चित्रण अत्यंत ईमानदारी और संजीदगी से करते हैं।

डॉ. साहा का व्यंग्य संग्रह 'हा वसंत!' सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि व्यवस्थाओं पर चोट करनेवाला व्यंग्य संग्रह है। इस संग्रह में जितने भी व्यंग्य हैं, वे किसी–न–किसी समस्याओं को हमारे समक्ष उपस्थित करते हैं। इस संग्रह में इनके प्रथम व्यंग्य 'हा वसंत' में इन्होंने लिखा है–''साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में कचरा बढ़ रहा है, सो साहित्य में भी कचरा भर रहा है। वैसे भी आज के अधिकांश साहित्यकार महानगरों, नगरों अथवा शहरों में रहते हैं और उनमें से अधिकांश
सीकरी से काम रखते हैं। कुछ साहित्यकार विभिन्न नावों में बैठकर सत्य की खोज करते हैं। इस क्रम में वे फैन्शी इमारतों एवं बड़े जंगलों में भी झाँक लेते हैं, जहाँ लॉन में, बालकनी में, छतों पर अथवा उनके ड्राइंग रूम में उन्हें बोनसाई बसंत दिख जाता है।''[1]

इस उक्ति में इन्होंने व्यंग्य के माध्यम से साहित्य के प्रति साहित्यकारों की बढ़ती उदासीनता का चित्र प्रस्तुत किया है। साहित्यकार का काम समाज और देश को जगाना होता है, लेकिन अगर साहित्यकार ही युगीन परिस्थितियों का चित्रण न कर पाए, तो साहित्य की प्रगति कैसे होगी? समाज उन्नत कैसे होगा? देश प्रगति कैसे करेगा? ये तमाम प्रश्न साहाजी ने 'हा वसंत!' में खड़े किए हैं। अपनी दूसरी व्यंग्य रचना 'सौंदर्य' में इन्होंने लिखा है–''सुंदरता कहीं भी, किसी भी वस्तु में हो सकती है, बस उसे देखने की दृष्टि चाहिए, सुनने के कान चाहिए।''[2]

साहाजी का यह कथन बहुताधिक आज के सत्य को उद्घाटित करता है। आज व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए उन वस्तुओं में भी सौंदर्य खोज लेता है, जिसमें सौंदर्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

'रामचरितमानस' के किष्किंधाकांड में मित्रता के लक्षण बताते हुए गो. तुलसीदास जी लिखते हैं–'जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी।।' अर्थात् जो लोग मित्र के दुख से दुखी नहीं होते हैं, उन्हें देखने से ही बड़ा पाप लगता है। इसमें स्वार्थ की तनिक भी गुंजाइश नहीं रहती है, लेकिन आज की मित्रता सिर्फ दिखावे और स्वार्थपूर्ति का साधन मात्र बनकर रह गई है। यही कारण है कि मित्रता के सही मायने लगभग समाप्त होते जा रहे हैं। इस तथ्य को साहाजी ने अपनी व्यंग्य रचना 'मित्रता' में दिखाने की कोशिश की है। 'गरीब' में गरीब की नए सिरे से व्याख्या जो इन्होंने की है, उसका कोई सानी नहीं है। संगठन–हीन, गुट–हीन व्यक्ति को गरीब से जोड़ना वाकई एक नई दृष्टि है। अशुभ को शुभ बनाने के क्रम में व्यक्ति किस तरह शब्दों के साथ छेड़छाड़ करता है और एक अनजान व्यक्ति किस प्रकार इस छेड़छाड़ का शिकार होता है, इसका उदाहरण इन्होंने अपनी व्यंग्य रचना 'शब्दलीला' के माध्यम से दिखाने की कोशिश की है। दुःख, अफसोस और खेद–ये तीनों शब्द मनुष्य के आंतरिक संवेदनाओं से जुड़े हैं। दुख से अफसोस और अफसोस से खेद अधिक सतही होता है। व्यक्ति कहीं–न–कहीं इन तीनों भावों से प्रभावित है और अपनी जिंदगी में कभी–न–कभी इनकी अनुभूति की है। यही कारण है कि जब ये शब्द हमारे कानों में पड़ते हैं, तो हम इन शब्दों के अर्थ और इनके महत्त्व को जानने के कारण उसी रूप में अपनी प्रतिक्रिया देते हैं। इसका कई उदाहरण साहाजी ने 'अफसोस' के माध्यम से दिया है।

'सीनियर सिटीजन' व्यंग्य रचना में साहाजी ने हास्य और व्यंग्य के माध्यम से अत्यंत गूढ़ बातों की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। सरकार विभिन्न सुख सुविधाएँ और छूट वरिष्ठ नागरिकों को देती है, लेकिन सामान्य व्यक्ति विशेष के हृदय में इस वरिष्ठता का कोई मूल्य नहीं है। विशेषकर ये युवा पीढ़ी, जो सिर्फ भौतिक संसार में उलझी हुई है। यही कारण है कि समाज में दो पीढ़ियों के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। हिंदी को समृद्ध करने के लिए तथाकथित बड़े–बड़े विद्वान और साहित्यकार एड़ी–चोटी का जोर लगा रहे हैं, लेकिन इससे हिंदी विकास की ओर न जाकर विनाश की ओर जा रही है। पौधारोपण को वृक्षारोपण कहना, उन्नत विद्यालय को उत्क्रमित विद्यालय कहना–निश्चय ही हिंदी की विचित्रता को उद्घाटित करने में सक्षम है, लेकिन हिंदी की जड़ इतनी गहरी पैठी हुई है कि इसकी हस्ती मिटती नहीं है। इसका बहुत अच्छा वर्णन साहाजी ने अपनी व्यंग्य रचना हिंदी की विचित्रता में किया है।

'जूता महिमा' में साहाजी ने तत्कालीन राजनीति परिवेश को उजागर किया है, जिसमें आम आदमी अपना क्षोभ प्रकट करने के लिए जूते का इस्तेमाल करता है, किंतु साहाजी क्षोभ को प्रकट करने के इस तरीके की अपने व्यंग्य रचना के माध्यम से निंदा करते हैं। उनका मानना है जनतंत्र का अर्थ ही

जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा शासन है। जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि ही शासन चलाते हैं। अगर जनता को चुने गए प्रतिनिधियों से शिकायत है, तो विरोध प्रकट करने के अन्य कई साधन हैं, जिसका प्रयोग कर वे उस शासक को सबक सिखा सकते हैं, लेकिन जूते द्वारा समस्या का समाधान कैसे हो सकता है? इस प्रश्न को साहाजी लोगों के सामने लाते हैं। ''चुनाव में हार–जीत होती है, पर राजनीति के आँगन में जोर आजमाइश करनेवालों की कभी हार नहीं होती। उनको अंततः राजनीति के आँगन के पार द्वार दिख ही जाता है।''[3]

साहाजी के 'सुरक्षित मार्ग' नामक व्यंग्य में उल्लिखित यह अंश राजनीतिक विचारधारा को लोगों के सामने प्रकट करता है। अधिकांश नेता अपने स्वार्थ के लिए धरना, अनशन, आंदोलन जैसे गाँधी जी द्वारा दिखाए गए मार्गों का दुरुपयोग कर रहे हैं। इसका चित्रण इस व्यंग्य में हुआ है। साथ ही साथ नेताओं की दलबदल नीति की समीक्षा भी इस व्यंग्य में की गई है। समाज तथा देश में ऐसे बौद्धिकों की कमी नहीं है, जो अपने स्वार्थ के लिए किसी भी हद तक गिर सकते हैं। इन बौद्धिकों को साहाजी ने वर्गों और कोटियों में विभक्त करते हुए अपने 'बौद्धिक' व्यंग्य रचना में यह बताने की कोशिश की है कि इन दोहरे चरित्र के बौद्धिकों की अपनी कोई दृष्टि या विचारधारा नहीं होती है। ये सिर्फ जूठन पसंद करते हैं और उसी को चाटकर इतराते फिरते हैं।

'कविजी' नामक व्यंग्य रचना में साहाजी ने कवियों के निरंतर गिरते प्रभाव को लोगों के सामने उपस्थित किया है। कवि आज समाज में धीरे–धीरे अपना प्रभाव खोते जा रहे हैं। इसका कारण उनकी महत्त्वाकांक्षा और स्वार्थ है, जिसके लिए वे किसी भी हद तक गिर सकते हैं। इसका चित्रण इन्होंने इस व्यंग्य में किया है। मध्यवर्गीय होते हुए भी साहा जी ने 'कुलीनता बोध' नामक व्यंग्य में अभिजात्य वर्ग की दृष्टि को 'मैं' शैली के माध्यम से सबके सामने लाने की कोशिश की है। अभिजात्य वर्ग के दिखावे की प्रवृत्ति के शख्त विरोधी हैं। उनका मानना है कि 'अभिजात्य भाव थोपे हुए पाउडर के समान' होता है, जो–कभी– न कभी धुलता अवश्य है। देश में व्याप्त विडंबनाओं को साहाजी ने 'उदारता' व्यंग्य के माध्यम से दिखाने की कोशिश की है। आज देश में जितनी भी तकलीफें और मुसीबतें हैं, इनके पीछे देश का उदारतापूर्ण व्यवहार है, जिसमें नेताओं की अदूरदर्शिता और कायरता की महक आती है। इस सत्य को साहाजी ने इस व्यंग्य में बखूबी दर्शाया है। अपने को प्रगतिशील बतानेवाले सत्ता लोलुप, व्यवस्था के पालतू कुत्तों पर साहाजी ने 'जैसी बहे बयार' में न सिर्फ चोट की है, बल्कि ऐसे दोगले चरित्रवाले व्यक्तियों का पर्दाफाश किया है। 'डिजिटल इंडिया' के नाम पर हो रहे मजाक को साहाजी ने अपने 'डिजिटल इंडिया' नामक व्यंग्य में दर्शाया है। देश की रूढ़िवादी और अशिक्षित जनता कैसे इसके महत्त्व को समझेगी, इस प्रश्न को साहाजी ने सरकार के सम्मुख उठाया है। ''बौद्धिक संसार और आध्यात्मिक संसार में सदा द्वन्द्व चलता आया है। हालाँकि दोनों का एक दूसरे के घर आना–जाना लगा रहता है, जैसे अलग–अलग दल, विचारधाराओं के नेता एक दूसरे के घरों में, पार्टियों में आते–जाते, मिलते–जुलते रहते हैं। भले ही अपने–अपने मंच से वे एक–दूसरे पर कीचड़ उछालें।''[4] इन पंक्तियों के माध्यम से साहाजी ने 'जहाँ चाह, वहाँ राह' व्यंग्य में बौद्धिक और आध्यात्मिक पाखंड को उजागर किया है, जो निश्चय ही सराहनीय है।

'मुद्दा संकट' व्यंग्य रचना के माध्यम से इन्होंने साहित्यकारों के समक्ष खड़ी चुनौतियों पर हमारा ध्यान केंद्रित किया है। कुछ साहित्यकार अति उत्साही होकर अन्य साहित्यकारों को 'सत्ता का जोरु' और 'गाँव के सीमा पर मुँह उठाकर भौंकनेवाला कुत्ता' कहकर संबोधित करते हैं, लेकिन साहाजी ने 'पूस की रात' कहानी के माध्यम से ऐसे साहित्यकारों को आईना
दिखाने की कोशिश की है। 'टहलुआ' के माध्यम से साहाजी ने देश और समाज के हर क्षेत्र में इनकी उपस्थिति दिखाई है। साथ–ही–साथ इन टहलुओं की प्रासंगिकता पर भी सवाल उठाए हैं। तब और अब व्यंग्य रचना के माध्यम से साहाजी ने प्रजातांत्रिक सरकार के अविवेक और असंवेदनशीलता को दर्शाया है, जो पुरस्कृत व्यक्ति को न मार्ग–व्यय देती है और न ठहरने की व्यवस्था कराती है। इससे अच्छी व्यवस्था तो रीतिकालीन समय के चर्चित कवि भूषण की की गई थी। भूषण को जो पुरस्कार मिलते थे, उन पुरस्कारों में निहित आशय को साहाजी ने अत्यंत सूक्ष्मता और विवेक से दर्शाया है, जिसके लिए वे निश्चय ही बधाई के पात्र हैं। 'किताब–चोरी' जैसे गंभीर विषय को अत्यंत संजीदगी से सिर्फ साहाजी ही उठा सकते हैं। किताब–चोरी ही एक ऐसी चोरी है, जिसमें चोर चोरी करके सीनाजोरी दिखा सकता है। साहाजी किताब को तीन श्रेणियों–ज्ञान की वस्तु, सजावट की वस्तु और कबाड़ की वस्तु में बाँटते हुए बताते हैं कि आजकल पुस्तकों की दूसरी और तीसरी श्रेणी का चलन ही अधिक है। इसके जिम्मेदार कहीं–न–कहीं सरकारी संस्थान है, जो अनुपयोगी किताबों को विभिन्न शिक्षण संस्थानों में उपलब्ध कराते हैं। इसकी कलई खोलने का प्रयास साहाजी ने इस व्यंग्य रचना में किया है। 'चोरी का सुख' व्यंग्य में साहाजी ने 'बाल–विमर्श' की झाँकी प्रस्तुत की है। कैसे बच्चों का बचपन धीरे–धीरे छिनता जा रहा है। मोबाइल, टी.वी., इंटरनेट आदि चोरों ने उनके बचपन को छीनकर उनके चेहरों पर तनाव भर दिया है। भूमंडलीकरण के प्रभाव से बच्चे भी बच नहीं पाए हैं। इसके साथ–साथ साहाजी ने कर–चोरी, रिश्वतखोरी, शिक्षा में चोरी, नेताओं की चोरी, बाबाओं की चोरी आदि का भी पर्दाफाश इस व्यंग्य में किया है। 'कितने–कितने डे' व्यंग्य में जहाँ साहाजी ने पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण करनेवालों पर करारी चोट की है। वहीं 'किट्टी' के माध्यम से देश में व्याप्त घोटालों की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। साथ–ही–साथ व्यवस्था में व्याप्त दोषों का उद्घाटन भी इस व्यंग्य में किया गया है, जिसमें अपराधी बेखौफ होकर इस भ्रष्ट व्यवस्था का लाभ उठाते हैं।

'अंतरात्मा' व्यंग्य में साहाजी ने व्यक्ति की क्षीण होती नैतिकता और ईमानदारी की ओर कटाक्ष किया है। आज मनुष्य कितना अधिक स्वार्थी और भ्रष्ट होता जा रहा है, इसका मर्मभेदी चित्रण साहाजी ने इस व्यंग्य में किया है। 'जाना' व्यंग्य में साहाजी ने जाना के अनेक अर्थों को परिभाषित करते हुए बताया है कि कहीं–कहीं जाना शब्द अत्यंत सुखद होता है, तो कहीं पीड़ादायक। 'घुसपैठिए' व्यंग्य के माध्यम से साहाजी ने रेल व्यवस्था पर करारी चोट की है। अधिकांश प्रांतों में यह व्यवस्था इतनी अधिक बोझिल और दमघोंटू हो जाती है कि व्यक्ति को बरबस इस व्यवस्था का शिकार होना पड़ता है।

''साईं एक पूँछ बताइए, जिसपे भरोसा किया जाय।
मझधार बीच न टूटे–छूटे, सम्मान तलक ले जाय।।''[5]

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से 'एक अदद पूँछ की तलाश' नामक व्यंग्य में साहाजी ने व्यवस्थायिक जुगाड़ का पर्दाफाश किया है, जिसमें एक व्यक्ति काबिल होते हुए भी कोई सम्मान प्राप्त नहीं कर पाता है और एक व्यक्ति पूँछ पकड़कर फर्श से अर्श तक पहुँच जाता है। 'आत्मा–मुक्त आदमी की आवश्यकता' शीर्षक व्यंग्य में साहाजी ने समसामयिक परिवेश में कवियों के निरंतर गिरते मूल्य पर कटाक्ष किया है। साथ–ही–साथ मल्टीनेशनल कंपनियों के बढ़ते प्रभाव को भी दर्शाने की चेष्टा की है, जिसने व्यक्तियों के अंदर पैसे की भूख को बढ़ाने का काम किया है। इसके दलाल कमीशन के लिए बखूबी इस कार्य को बड़ी कुशलता से करते हैं। इस कार्य को करनेवाली आत्मा मुक्त होती हैं। साहाजी का ऐसा मानना है कि कवियों को, किंतु आत्मा युक्त होना चाहिए, तभी समाज और देश की उन्नति हो सकती है। 'मूगफली–चिंतन' शीर्षक व्यंग्य में साहाजी ने राजनीति और फिल्म जगत में चल रहे वंशवाद पर करारी चोट की है और बताया है कि ''पहले जहाँ इन दोनों क्षेत्रों में जाने के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी, वहीं आज यह क्षेत्र वंशवाद की परंपरा से ग्रस्त हो गए हैं, जिसके फलस्वरूप नए लोगों का प्रवेश इन क्षेत्रों में नहीं हो पा रहा है। वंशवाद ने कुशल मेधावी तथा प्रतिभा संपन्न लोगों का

रास्ता रोक दिया है। हमारे देश के अधिकांश साधारण जन नियम कानून की परवाह नहीं करते हैं।''[6]

उपर्युक्त अंश में ही साहाजी की व्यंग्य रचना 'साधारण जन तो तेने कहिए...' का सार है। भारत के अधिकांश साधारण जनों में नियम कानून को तोड़ने की एक आदत बन गई है, जैसे ट्रैफिक नियमों को तोड़ना, रेलवे क्रॉसिंग पर गेट बंद रहने पर भी आवागमन करना, क्यू तोड़ना, पान–गुटखा की पीक, थूक आदि से सार्वजनिक स्थलों को गंदा करना आदि उनके सामान्य व्यवहार में शामिल हो चुके हैं। इन आदतों से मुक्ति पाए बगैर व्यक्ति तथा देश का विकास कैसे होगा? यह साहाजी के चिंतन का विषय है।

'आइडिया' व्यंग्य रचना में इन्होंने कई विषयों को उठाया है–मसलन, ''राजनीति में चले जाओ, पूंजी शून्य और फायदा असीम।''[7] इस अंश में जहाँ उन्होंने राजनीतिक फायदे पर कटाक्ष किया है, वहीं ''दंगाइयों की दया से हमारे देश में राख की कोई कमी नहीं है।''[8] अंश में साहाजी ने देश में आए दिन होनेवाले दंगों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है, जिससे सार्वजनिक संपत्ति को बहुत नुकसान पहुँचता है। इसके साथ–साथ इस व्यंग्य में साहाजी ने ऑनलाइन कंपनियों के बढ़ते प्रभाव को भी दिखाने की कोशिश की है, जो निरंतर हमारे समाज को अपने जाल में फँसा रही है। गंभीर चिंतन नामक व्यंग्य रचना में साहाजी ने कविता लेखन के लिए हृदयपक्ष की महत्ता पर बल दिया है। संवाद–शैली के माध्यम से उन्होंने यह बताने की कोशिश की है कि पहले की कविताओं में हृदय–पक्ष की प्रधानता होती थी और वह अनायास कवि के मुख से फूट पड़ती थी, लेकिन आज सायास और प्रयत्न करके तथा मस्तिष्क पक्ष को प्रधानता देकर कविताएँ लिखी जाती हैं। यही कारण है कि इन कविताओं का मूल्य उतना प्रभावी नहीं होता, जितना पहले की कविताओं का हुआ करता था।

'नालायक' व्यंग्य रचना में साहाजी ने नालायक के विभिन्न अर्थ समझाते हुए बताया है कि वर्तमान समय में जो व्यक्ति छल–कपट, ईर्ष्या–द्वेष आदि से दूर रहता है, वह नालायक है। पारंपरिक जीवन जीने से जो मना करता है, वह नालायक है। हमारे देश की आम जनता अभाव की चक्की में पिस रही है। सरकार का ध्यान इन पर न होने के कारण इन साधारण जनों को अनेक मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। कभी–कभी तो इनकी जान तक चली जाती है। यह सब प्रशासन की लापरवाही तथा आम जनता में चेतना के अभाव के कारण होता है। सरकार जब तक इन वर्गों के उपकार हेतु कोई ठोस कदम नहीं उठाएगी, तब तक यह वर्ग निरंतर शोषित होते रहेंगे और समाज की मूल धारा में शामिल नहीं हो पाएँगे। इस तथ्य को साहाजी ने 'मजबूरन को नहि दोष गुसाईं' व्यंग्य रचना में स्पष्ट कर दिया है। ''जैसे जल अपना तल ढूँढ लेता है, वैसे ही संवेदनाएँ भी अपना मार्ग तलाश लेती हैं।''[9]

उपर्युक्त अंश के माध्यम से साहाजी ने 'संवेदना और ख्वाहिश' शीर्षक व्यंग्य में मनुष्य की संवेदनाओं और ख्वाहिशों की चर्चा करते हुए बताया है कि आज मनुष्य संवेदना पाने के लिए निरंतर छटपटा रहा है। वह इसका लाभ उठाने का भी कोई अवसर नहीं छोड़ता है। वह इसे अपने फायदे के लिए इस्तेमाल करना चाहता है। यही कारण है कि इसकी (संवेदना) साख दिन पर दिन गिरती जा रही है। जहाँ तक ख्वाहिशों की बात है, मनुष्य की ख्वाहिशें भी निरंतर आत्म–केंद्रित होती जा रही हैं। यही कारण है कि उसकी हमदर्दी में भी प्रश्नचिह्न लग जाता है। 'भाँति–भाँति के कवि' शीर्षक व्यंग्य में साहाजी ने आज के दौर के कवियों को विभिन्न शीर्षकों में बाँटकर बताया है कि आज के कवि निरंतर अपनी साख खोते जा रहे हैं, वे स्वार्थ के वशीभूत होकर कविता की हत्या करने में जुटे हैं, उनको सिर्फ मंच से प्रेम रह गया है। कविता की वास्तविक परिभाषा को भुलाकर वे सिर्फ अपनी स्वार्थ सिद्धि में जुटे हुए हैं। यही कारण है कि कविता आम जीवन से निरंतर कटती जा रही है। परिवर्तन को जीवन का नियम बताते हुए 'सब दिन जात न एक समान' शीर्षक व्यंग्य में साहाजी ने यह बताने की कोशिश की है कि इस सृष्टि में प्रत्येक वस्तु की सुंदरता स्थायी नहीं होती है, जो वस्तुएँ कभी देखने में अत्यंत मोहक और उपयोगी हुआ करती थीं, समय परिवर्तन के साथ ही उसकी मोहकता और उपयोगिता समाप्त हो जाती है और वे वस्तुएँ अर्श से फर्श पर आ जाती हैं। चाहे वह घड़ी हो या मोबाईल या फिर रेजगारी इस सृष्टि की प्रत्येक वस्तुएँ नश्वर हैं। किसी भी वस्तु की चिरकालीनता की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं, जो अपने शुरूआती दौर में खूब चर्चा बटोरती है और एक स्टेटस–सिंबल के रूप में व्यवहृत होती है, लेकिन समय के साथ ही उसकी उपयोगिता भी घट जाती है और वे वस्तुएँ श्रीहीन होकर अपने अस्तित्व को तलाशती नजर आती हैं। आज की संस्कृति ही बाजारवादी संस्कृति है। जो निरंतर अपना स्वरूप बदलती रहती है और व्यक्ति इसके जाल में फँसकर अपना विवेक खोता जा रहा है। साहाजी को ऐसा विश्वास है कि एक दिन हमारी खोई हुई संस्कृति वापस आएगी और इस बाजारवादी संस्कृति का गर्व चूर चूर हो जाएगा। इस तथ्य को वे अपने व्यंग्य 'कबीरा गर्व न कीजिए' में बखूबी प्रस्तुत करते हैं।

राजधानी ट्रेन में सफर करते हुए जब एक बार साहाजी ने एक बच्ची को अपना परिचय एक कवि के रूप में दिया, तो उस बच्ची के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, क्योंकि उसने आज तक कभी कवि नहीं देखा था और उसके भाई के चित्त में कवि की जो धारणा थी, वह भी अजीबोगरीब थी, जिसका वास्तविक कवियों से कोई संबंध नहीं था। यही कारण है कि 'साहित्यकार संग्रहालय की आवश्यकता' शीर्षक व्यंग्य में साहाजी वर्तमान पीढ़ी के लिए साहित्यकार संग्रहालय की बात उठाते हैं, जिससे ये नई पीढ़ी साहित्यकारों से परिचित हो सके और उनकी भ्रांतियाँ समाप्त हो सके। 'यूरेका' साहाजी की एक मारक व्यंग्य रचना है। इसमें इन्होंने देश के राजनीतिक उथल–पुथल को हमारे समक्ष उपस्थित किया है। इसमें उन्होंने यह बताने की कोशिश की है कि वर्तमान समय में यदि सत्तापक्ष ईमानदारी से काम करता है और विपक्षवाले का कोई नेता उसमें फँस जाता है तो विपक्ष बड़ी आसानी से लोकतंत्र की दुहाई देते हुए कहते हैं–'संविधान खतरे में है', लेकिन वास्तव में हमारे देश का संविधान खतरे में नहीं, बल्कि ये भ्रष्टाचारी नेता खतरे में पड़े होते हैं। राजनीतिक अंडर स्टैंडिंग की बात को भी साहाजी ने अत्यंत बारीकी से उठाया है।

आजादी के इतने वर्षों में भी हम अभी तक बुनियादी समस्याओं से जूझ रहे हैं; जैसे–बिजली, पानी, सड़क, शिक्षा, बेरोजगारी आदि। इन समस्याओं को दूर करने के लिए नेताओं द्वारा अनेक दावे और वादे किए जाते हैं, लेकिन यथार्थ के धरातल पर ये समस्त दावे और वादे खोखले नजर आते हैं। साहाजी का 'अद्‌भुत स्वागत' व्यंग्य रचना का यह अंश ''नेता और वादा में एक लंबी दूरी है, पर वचन देना उनकी मजबूरी है।''[10] उनके मनोभावों को पूरी तरह दर्शाता है। भ्रष्टाचार की जड़ें धीरे–धीरे फैलती जा रही है। आज कोई भी देश इससे अछूता नहीं है। लेकिन भारत में इसका प्रभाव अत्यंत व्यापक है और इसमें यह अव्वल बनता जा रहा है। इसका कारण है यहाँ की जनता में जागरूकता की कमी तथा देश की बागडोर थामे भ्रष्टाचारी नेताओं का स्वार्थ, जो इसकी जड़ों को और मजबूत बना रहे हैं। भ्रष्टाचार को रोकने के लिए अनेक कानून और नियम बनाए गए हैं, लेकिन वे भी खोखले साबित होते हैं। इस तथ्य को साहाजी ने अपने व्यंग्य 'अव्वलता का आनंद' में स्पष्ट किया है। साथ–ही–साथ इन्होंने भारत में कुकुरमुत्ते की तरह फैले टेक्निकल बाबाओं पर भी कटाक्ष किया है। व्यक्ति का स्वार्थ उसे कितना नीचे गिरा देता है, यह बात किसी से छिपी नहीं है, लेकिन यही स्वार्थ जब अफवाहों और अंधविश्वासों के साथ उपस्थित होता है, तो उसकी भयावहता कितनी बढ़ जाती है, इसकी पुष्टि साहाजी अपनी व्यंग्य रचना 'भूत से मुक्ति' के माध्यम से करते हैं।

'अथ श्री आलू कथा' नामक व्यंग्य में साहाजी ने जमाखोरी पर कटाक्ष किया है। जमाखोरी एक अत्यंत भयंकर समस्या है, जो महँगाई की जननी है। व्यापारियों और नेताओं की
साँठगाँठ ने महँगाई को सिरसा के मुख समान बना दिया है, जो निरंतर बढ़ती

जा रही है। 'पर्दाफाश' साक्षात्कार शैली में लिखा एक मारक व्यंग्य है, जिसमें साहाजी ने शिक्षण संस्थानों में व्याप्त दोषों पर हमारा ध्यान केंद्रित किया है। शिक्षण संस्थानों को चलानेवाले लोग ही अगर भ्रष्ट, स्वार्थी तथा गुटबाजी के शिकार हो जाएँगे, तो शिक्षण संस्थानों की उन्नति कैसे होगी? इस प्रश्न को साहाजी लोगों के समक्ष लाने का प्रयास करते हैं। 'पहले क्यों न बताया?' व्यंग्य रचना में साहाजी ने बुद्धिजीवियों के रवैये पर प्रश्न खड़ा किया है, जो किसी–न–किसी संगठन से जुड़े होते हैं, और संगठनों के निर्देशों पर चलते हैं। इनकी अपनी कोई विचारधारा नहीं होती है। यह संगठन के टहलुए होते हैं। इसके साथ–साथ साहाजी ने समाज में रहनेवाले उनलोगों का भी चित्र उपस्थित किया है, जो मुफ्त का सुझाव देते रहते हैं, लेकिन यदि इनसे किसी काम की अपेक्षा की जाए, तो ये लापता हो जाते हैं।

'बोल्ड आउट' व्यंग्य के माध्यम से साहाजी ने सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। आज सोशल मीडिया हमारे दैनिक जीवन का एक हिस्सा बन चुकी है। हम कहीं–न–कहीं इसके जाल में फँसते जा रहे हैं। इसकी जड़ें इतनी गहरी पैठ गई है कि समाज का कोई भी तबका इसके बढ़ते प्रभाव से अछूता नहीं रह गया है। कथनी और करनी व्यंग्य रचना में साहाजी ने समाज में रहनेवाले कुछ ऐसे दोहरे चरित्रों पर व्यंग्य किया है, जिनकी कथनी और करनी में जमीन–आसमान का अंतर होता है। ये कहते हैं कुछ और करते हैं कुछ। यही कारण है कि इन पर भरोसा करना अत्यंत मुश्किल है। इनकी बातों पर जो इंसान यकीन कर लेगा, वह अपना सर्वस्व गँवा देगा।

'चोर अंकल' व्यंग्य रचना के माध्यम से साहाजी ने वर्तमान समय में हो रहे देश के घोटालों और उसके बाद देश से पलायन करते ऐसे घोटालेबाज चोरों का जिक्र किया है, जो देश तथा गरीबों की गाढ़ी कमाई का पैसा लेकर भाग जाते हैं और फिर भी उन्हें कुछ भ्रष्ट बेईमान लोग सम्मानसूचक शब्दों के साथ याद करते हैं। यह दुर्भाग्य नहीं, तो और क्या है? यह चोर कभी हमें व्यवसायी और कभी हमें नेता के रूप में दिखाई देते हैं। चोर चोरी घर में करे या बाहर, वह चोर ही कहलाएगा। वह घोटाला करके देश में रहे या बाहर, वह घोटालेबाज ही कहलाएगा। 'सबका साथ, सबका विकास और सबका विश्वास' यह नारा जितना प्रसिद्ध है, उतना ही इसके पीछे की सच्चाई अत्यंत चौकानेवाली है। आज के इस भ्रष्टतंत्र में हर वर्ग अपनी स्वार्थ सिद्धि में लगा हुआ है। उसे किसी की कोई परवाह नहीं है। झूठी कसमें खाना, धोखा देना, छल करना आदि बुराइयाँ उसकी नसों में समा चुकी हैं। यही कारण है कि इसके फलस्वरूप देश और समाज की स्थिति दिन पर दिन दयनीय होती जा रही है। बड़े–बड़े अधिकारी भी इस भ्रष्ट व्यवस्था का अंग बनकर अपना उल्लू सीधा करने में लगे हुए हैं। इसलिए देश, समाज और व्यक्ति की उन्नति में निरंतर बाधाएँ आती जा रही हैं। साहाजी ने इस सच्चाई को अपने इस व्यंग्य में बखूबी दर्शाया है। भूमंडलीकरण और बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव के फलस्वरूप हमारे नैसर्गिक सौंदर्य धीरे–धीरे विलुप्त होते जा रहे हैं। आधुनिकता की झूठी चादर ओढ़कर अनेक लोग छद्म दिखावे की प्रवृत्ति से ग्रस्त होते जा रहे हैं। इसका प्रभाव हमारी सभ्यता और संस्कृति पर निरंतर पड़ रहा है। 'जाने कहाँ गए वो दिन' में साहाजी लिखते हैं–''तब मन अनायास उन टावरों की तलाश करने लगता है, जो हमारी प्राकृतिक सौन्दर्यानुभूति को नष्ट कर रहे हैं, जो हमारी समस्त परंपराओं एवं संस्कृति को समाप्त कर रहे हैं, जो हमारे हृदय की रसधारा को कुंद कर रहे हैं और जिनकी मार से हमारा समाज दिन–प्रतिदिन घायल होता जा रहा है।''[11] इस अंश के माध्यम से साहाजी ने आधुनिकता और बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव को पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है।

'फोर्टी नाइन प्लस वन' व्यंग्य रचना में साहाजी ने देश के बुद्धिजीवियों पर करारी चोट की है, जिनका अपना न कोई चिंतन है और न ही कोई विचारधारा। इनका अपना एक समूह है। साहाजी ने अपनी बौद्धिक रचना में इसे कई कोटियों और श्रेणियों में बाँटकर दिखाया भी है। इनका काम सिर्फ देश और समाज पर बनी नीतियों का विरोध करना है। इनका यह विरोध कभी–कभी देशद्रोह के रूप में नजर आने लगता है। ये अपने आकाओं के मानसिक गुलाम बन चुके हैं। 'लोकतांत्रिक प्रक्रिया' शीर्षक व्यंग्य मैं साहाजी ने मनुष्य के सिद्धांत और व्यवहार पर करारी चोट की है। अनेक लोग ऐसे होते हैं, जो हमेशा सिद्धांतों की दुहाई देते रहते हैं, लेकिन जब उन्हें पावर मिल जाता है, तो उनका यह सिद्धांत न जाने कहाँ चला जाता है। ऐसे ही लोग भाषणों में तो लोकतंत्र का हवाला देते हैं, लेकिन व्यवहार में इनका लोकतंत्र कहीं दिखाई नहीं देता है। प्रेमचंद की 'नशा' कहानी में भी इसी सिद्धांत और व्यवहार की बात कही गई है। कहानी का मुख्य पात्र बगैर भी सिद्धांतों की बात करता है। जमीदारों को कोसता है। उन्हें भला बुरा कहता है, लेकिन जब उसके मित्र ईश्वर की कृपा से उसे छद्म जमींदार बनने का मौका मिलता है, तो वह भी अपने आपको जमींदार मानने लगता है और ईश्वरी से भी ज्यादा तुनक मिजाज बन जाता है। बात–बात में सबको डाँटना, झगड़ा करना, पीटना आदि उसका स्वभाव बन जाता है। उस समय उसके व्यवहार से उसके सिद्धांतों की कलई खुल जाती है।

आज हिंदी साहित्य में बहुत सारे विमर्शों पर चर्चाएँ हो रही हैं, जैसे–स्त्री–विमर्श, दलित–विमर्श, वृद्ध–विमर्श आदि उसी कड़ी में आज बाल–विमर्श भी जुड़ गया है। वर्तमान परिवेश में अभिभावक अपने बच्चों से अधिक–से–अधिक नंबर पाने की अपेक्षा करते हैं। इसके लिए वे अपने बच्चों पर मानसिक दबाव डालना शुरू कर देते हैं। हालाँकि इस दबाव के शिकार वे खुद भी हैं। बच्चों का मन कोमल होता है। उनमें दबाव झेलने की क्षमता नहीं होती है। वे स्वच्छंद विचरण करना चाहते हैं, लेकिन परिस्थितियाँ उन्हें ऐसा करने नहीं देती हैं। वे कुंठित हो जाते हैं और कभी–कभी उनकी कुंठा इतनी बढ़ जाती है कि वे आत्महत्या जैसा कृत्य भी कर डालते हैं। यह चिंतन का विषय है। बदलते परिवेश में शिक्षक और अभिभावकों को भी बदलना जरूरी है, लेकिन इसके लिए बच्चों पर अकारण दबाव डालना किसी भी अर्थ में सही नहीं है। इस तथ्य को साहाजी अपनी व्यंग्य रचना 'एटी प्लस' मैं बखूबी स्पष्ट करते हैं।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि डॉ. पंकज साहा के व्यंग्य–संग्रह 'हा वसंत!' में जहाँ एक ओर समसामयिक समाज की रूढ़ियों, अंधविश्वासों आदि पर करारी चोट की गई है, वहीं दूसरी ओर राजनीतिक परिवेश में व्याप्त विद्रूपताओं पर कटाक्ष किया गया है। निरंतर क्षीण होते मानवीय मूल्य, ह्रास होती संस्कृतियाँ, धार्मिक क्षेत्रों में व्यापक बाह्याडंबर, भूमंडलीकरण के बढ़ते प्रभाव से नष्ट होती सभ्यता, साहित्यकारों की देश और समाज के प्रति बढ़ती उदासीनता आदि ज्वलंत समस्याओं पर इन्होंने अपनी रचना के माध्यम से व्यंग्य बाण चलाए हैं। इनके व्यंग्य का उद्देश्य सिर्फ इन्हें कोसना नहीं है, बल्कि वे इसके माध्यम से वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन चाहते हैं। ये व्यंग्य अनेक विषयों और शैलियों में लिखे गए हैं। बिहारीलाल के दोहे के संबंध में कही गई निम्न पंक्तियाँ–

'सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटन लगे, घाव करे गंभीर।।'

साहा जी की व्यंग्य रचना 'हा बसत!' पर भी लागू होती है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. डॉ. पंकज साहा. हा वसंता, पृ. 1
2. वही, पृ. 4 3. वही, पृ. 24 4. वही, पृ. 39
5. वही, पृ. 60 6. वही, पृ. 68 7. वही, पृ. 69
8. वही, पृ. 70 9. वही, पृ. 78 10. वही, पृ. 93
11. वही, पृ. 129

समीक्षा

चुप्पियों के बीच : जनसरोकार की ग़ज़लें

नीरज नीर
बुद्ध विहार, अशोक नगर, राँची (झारखंड)
मो. – 8789263238

हिन्दी ग़ज़लें माशूका की जुल्फों के पेंचो खम से दूर आम आदमी के दुख–तकलीफ, उसकी हँसी, खुशी और आए दिन दृष्टिगत होनेवाली जिंदगी की विसंगतियों से अपना नाता जोड़ती हैं। हिन्दी ग़ज़लों का जनसरोकार बड़ा है। समाज की निस्संगता, जद्दोजहद, रिश्तों में आए बिखराव, भरोसे का टूटना, राजनैतिक
प्रपंच आदि हिन्दी ग़ज़लों के न केवल विषय वस्तु बने हैं, बल्कि बहुत ही खूबसूरती से दर्ज भी हुये हैं।

हिन्दी साहित्य में ग़ज़लों को पर्याप्त महत्त्व नहीं दिये जाने के बावजूद हिन्दी ग़ज़लों में अच्छा काम हो रहा है और ऐसे ही अच्छा लिखनेवालों में एक नाम है–डॉ. भावना कुमारी, जिनका अभी हालिया प्रकाशित ग़ज़ल संग्रह है– 'चुप्पियों के बीच'। यह ग़ज़ल संग्रह वर्तमान हिन्दी ग़ज़लों के मिजाज के अनुरूप है एवं बेहतरीन बन पड़ा है। हिन्दी ग़ज़लें सामान्य रूप से उर्दू बहरी के अनुसार ही लिखी जा रही हैं। भावना जी के इस ग़ज़ल संग्रह में सम्मिलित ग़ज़लें, ग़ज़लों के व्याकरण के मापदंड पर भी खरी उतरती हैं। इनकी ग़ज़लें शिल्प और कथ्य दोनों ही लिहाज से उत्तम है और इसीलिए जब उस्ताद शायर दरवेश भारती यह कहते हैं कि डॉ भावना आज की महिला ग़ज़ल लेखन में एक सफल ग़ज़लकारा है, तो उनकी बात बहुत अतिशयोक्ति नहीं लगती है।

डॉ. भावना समाज की नब्ज पकड़ती है एवं हवा हवाई बातों के बदले ठोस धरातल पर अपनी बातों की बुनियाद रखती है। उनके शेरों में कुछ कड़वे, मगर जरूरी प्रश्न उभरते हैं, जो जनसामान्य के भी प्रश्न हैं और यही उनकी ग़ज़लों के जनसरोकार को स्थापित करते हैं। कुछ अशआर देखे–

''नदियाँ सूखी, पर्वत समतल, क्या बोलूँ?
मैं हूँ या फिर सब हैं पागल, क्या बोलूँ?
अफसरशाही, सत्ताधारी सब डूबे
घूस बनी है ऐसी दलदल क्या बोलूँ?''

ग़ज़लों के बारे में कहा जाता है कि ग़ज़ल लिखी नहीं जाती, बल्कि कही जाती है और जब कोई बात कही जाती है, तो उसका ध्वन्यात्मक प्रभाव सुननेवाले के मन पर पड़ता है। इसलिए ग़ज़लों के बारे में यह जरूरी है कि जब पाठक इन्हें पढ़े, तो वही प्रभाव उसके मनो–मस्तिष्क पर पड़ना चाहिए। इस संग्रह की ग़ज़लें इस लिहाज से अपना काम बड़े ही सलीके से करती है।

वर्तमान समय विडंबनाओं का समय है। कथनी और करनी में घोर अंतर का समय है। हिन्दी साहित्य, राजनीति का पिछलग्गू बना है। आत्मवंचना प्रगतिशीलता की वाहक बनी है। प्रपंचों के झूठ एवं जालसाजी के आगे सत्य कराहता दिखता है। ऐसे में इन पंक्तियों की सजीवता एवं धार देखिये–

''खुद को यूँ झूठलाना छोड़
हरदम शोर मचाना छोड़
अँगना दिल का है सीधा,
टेढ़ा नाच दिखाना छोड़
दरिया का रास्ता हूँ मैं
मुझको ओस चटाना छोड़।''

डॉ. भावना की ग़ज़ल संश्लिष्ट जीवनानुभवों की धारदार अभिव्यक्ति है। समाज एवं राजनीति की गहरी समझ से लबरेज़ उनके अशआर बड़ी ही सूक्ष्मता एवं चतुराई से वर्तमान के नंगेपन को उजागर कर देती है।

''पतली जीभ की मोटी चमड़ी हद है यार
घोर सिपाही हैं अब समधी हद है यार
जंगल से महलों की दूरी खत्म हुई
जोगी भोगी की है चलती हद है यार।''

हाशिये पर रह गए समाज की अकूत क्षमता, उनकी संभावनाओं को दर्शाती हुई उनकी ग़ज़लें उनकी हौसला आफजाई भी करती है। सकारात्मकता से उमगती उनकी ग़ज़लों में परिवर्तन के लिए आहवान तो है, पर उस किताबी क्रांति का कोई भ्रम नहीं है। यह शेर देखें–

''हाँसले की चोट से वह पत्थरों को तोड़ दे
ठान ले तो फिर सितारे तोड़ लाते हाशिये।''

डॉ. भावना की ग़ज़लों के माधुर्य में एक कसक एवं सम्मोहन है। ये बड़ी बात भी सरलता से कह देती है। हिन्दी ग़ज़लों की यह खास विशेषता रही है कि ये अतिबौद्धिकतावाद की शिकार नहीं रही है और इनकी ग़ज़लें भी इसका अपवाद नहीं है। वे अपनी बात बोधगम्य पर असरदार तरीके से करती हैं। कुछ अशआर देखें–

''बड़ी बिल्डिंग, बड़ी सड़कों के ही किस्से सुनाती है
शहर की तितलियाँ जब गाँव में भूले से आती हैं
पुआलों के बिछावन पर यूँ जाते नींद है आई
कि जैसे रात भर परियाँ कोई लोरी सुनाती है
पुरानी पीढ़ियों की आँख में भी सुकून दिखता
चलाकर साइकल जो बेटियाँ पढ़ने को जाती हैं।''

डॉ. भावना की ग़ज़लें आज के यथार्थ को ज्यों–का–त्यों पाठकों के सामने रखती हैं एवं भला–बुरा का निर्णय उन्हें ही करने देती हैं। इनकी ग़ज़लें कहीं भी उपदेशात्मक नहीं होती और न ही कहीं अपने विचार थोपती प्रतीत होती हैं। अच्छी ग़ज़लों की एक विशेषता यह भी होती है कि वे खराब ग़ज़लों को रेखांकित भी करती हैं। डॉ. भावना की ग़ज़लें यह काम बड़े ही सलीके से करती हैं। समाज में रिश्तों के दरकने को ग़ज़लकारा कितनी खूबसूरती से चंद शब्दों में बयाँ कर देती है। देखिये–

''बेटे कैसी मिसाल देते हैं
माँ को घर से निकाल देते हैं।''

कुल मिलाकर 'चुप्पियों के बीच' जो किताबगंज प्रकाशन से प्रकाशित होकर आयी है, एक पठनीय ग़ज़ल संग्रह है एवं डॉ. भावना इसके लिए बधाई की पात्र है।

95 पृष्ठों की इस किताब की कीमत 195 रुपये है, जो आकर्षक आवरण, उत्तम कागज एवं उत्कृष्ट छपाई को देखते हुए ज्यादा नहीं प्रतीत होती है।

गजल संग्रह : चुप्पियों के बीच, रचनाकर डॉ. भावना, मुजफ्फरपुर
प्रकाशक किताबगंज प्रकाशन, पृष्ठ 95, मूल्य 195 रुपये

समीक्षा

प्रसाद के नाटक : इतिहास, कल्पना और काव्य

दयानन्द जायसवाल
9931240303

डॉ. अरुण कुमार वर्मा, प्रवक्ता जवाहर नवोदय विद्यालय, पदमी, मण्डला (म. प्र.) की आलोचनात्मक पुस्तक 'प्रसाद के नाटक : इतिहास, कल्पना और काव्य' में प्रसाद की कृतियों के माध्यम से भारतीय सामाजिक उत्थान, राष्ट्रकल्याण, मानवता की स्थापना तथा इतिहास, कल्पना और काव्य का अनुशीलन किया गया है। डॉ. अरुण कुमार अध्यापक के साथ कवि, लेखक और समीक्षक भी हैं। इनकी रचनाएँ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित तो हैं ही, पुस्तकें भी कई–एक प्रकाशित हैं।

इस पुस्तक में इन्होंने प्रसाद के जीवन चरित्र, कृति, उनके विचार, उनके नाटकों में इतिहास, नाटक और कल्पना तथा नाटकों में काव्य को प्रतिपाद्य विषय बनाया है। पुस्तक के आलोक में भाव पक्ष एवं कला पक्ष की दृष्टि से प्रसादजी का काव्य उच्चकोटि का है। इनके काव्य में इतिहास, दर्शन एवं कला का मणिकांचन संयोग देखा जा सकता है। छायावाद के जनक जयशंकर प्रसादजी का हिंदी साहित्य के आधुनिक रचनाकारों में विशिष्ट स्थान है। भावों की तीव्रता, अनुभूतियों की अधिकता और विचारों की गतिशीलता की त्रिवेणी को प्रवाहित करनेवाली कल्पना की पैठ प्रसाद जी के काव्य की सर्वप्रधान विशेषता है।

प्रसाद जी का भावमय संसार किसी प्रकार के बन्धन को स्वीकारने वाला नहीं है। संसार और जीवन की वास्तविकता में प्रसाद जी ने कल्पना का स्वागत किया था, क्योंकि साहित्य का सम्बन्ध कल्पना से होता है और साहित्यकार के समक्ष उसकी वर्तमान परिस्थिति उसके अतीत से भिन्न होती है, इसलिए घटनाओं को लेखक अपनी कल्पना द्वारा वर्तमान परिस्थिति में डालकर अभिव्यक्त करता है। प्रसादजी भी इसी प्रकार इतिहास के चरित्रों में अपनी कल्पना का संयोग करके जो कथा प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं, उसकी गूंज हमें उनके समकालीन समय की अभिव्यक्ति प्रदान करती है। एक इतिहासकार जहाँ तथ्यों द्वारा अपनी बात को पुष्ट करता है, वहीं एक साहित्यकार इतिहास के तथ्यों के माध्यम से कल्पना द्वारा अपने समय को अभिव्यक्त करता है। प्रसाद भी अपने साहित्य में इसी तत्त्व को दर्शाते हैं और अपनी कल्पना द्वारा वह अपने समय को वाणी देने का काम भी करते हैं। उनकी समस्त साहित्य सृष्टि में काव्य के व्यंजन प्रभूत मात्रा में विद्यमान हैं। साथ ही कल्पना के धनी होने से जीवन की नाटकीय स्थितियों के वे इतने कुशल आविष्कर्ता व प्रयोक्ता हैं कि उनके द्वारा कविता, कहानी, उपन्यास आदि अन्य साहित्य रूपों में भी मनोरम नाटकीय परिस्थितियों की सहज ही अवतारणा हो गई है। नाटक में कविता व कविता में नाटक के तत्त्व, आमने–सामने से आती हुई प्रवाहमान दिखती है।

रचनाकार डॉ. अरुण कुमार वर्मा अपना विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि नाटक के क्षेत्र में ''प्रसाद का उदय एक तरह से संक्रमण काल की पृष्ठभूमि में मान सकते हैं। जिस समय बांग्ला में काफी नाटक लिखे जा चुके थे। पारसी कम्पनियों की नींव पर चुकी थी। ऐसे समय में प्रसाद ने ऐसे मार्ग को चुना, जिसमें भारतीय और पाश्चात्य पद्धतियों का समन्वय देखा जा सकता है।'' इन्होंने कल्पना का प्रयोग ऐसी चतुराई से किया है कि वह इतिहास ही लगता है। इनकी कल्पना को स्वीकार करते हुए रस्तोगी जी लिखते हैं–''प्रसाद के लिए यदि इतिहास मुक्ति का प्रश्न और उसका माध्यम था, तो कल्पना उनके लिए आवश्यक आस्था थी, ऐसी आस्था जिसमें मुक्ति के सहज सन्दर्भ हैं। सन्दर्भित नाटकों में इतिहास और कल्पना कुछ इस तरह से घुल–मिल गए हैं कि उनको अलग करना मुश्किल है और इसी से वे हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं, जिनकी इतिहास दृष्टि बेजोड़ है, कल्पना शक्ति असीमित है। इनके नाटकों में कल्पना की खोज करने के लिए प्रत्येक नाटकों का अध्ययन करना समीचीन है।'' कल्पना की कुशल कारीगरी, मानव और प्रकृति का सामंजस्य, नाटक–शैली–शिल्प, मनोवैज्ञानिक व सजीव चरित्र–सृष्टि समग्र व शाश्वत मानव–जीवन की व्याख्या आदि उन बहुमूल्य नाट्य– तत्त्वों की ओर दुष्यंत उतना ध्यान न दे सके, जो नाटक को श्रेष्ठतम साहित्य–रूप एवं जीवन की विशद व्याख्या बना देते हैं।

रचनाकार के अनुसार प्रसाद जी ने अपने नाटकों के चरित्र निर्माण में कल्पना का सुंदर प्रयोग किया है। इसी के द्वारा इनके पात्र मानवीय गुणों से सम्पन्न हैं। इनके पात्र राष्ट्र निर्माता होते हुए भी जीवन के संघर्षों और शुष्कता से विकल हैं। आशा– निराशा का भाव उनके हृदय में सदैव चलता रहता है। कहीं–न–कहीं उनके मन के कोने में अभावों की बिजली कौंध जाती है। यही संवेदना उन्हें मानवीय धरातल पर लाती है। प्रसाद जी के नाटकों में वर्तमान की प्रस्तुति देखने के लिए उनके नाटकों पर भी विचार करना आवश्यक है। उनके शुरूआती नाटक 'सज्जन' और 'करुणालय' है, जिनपर सूक्ष्मता से विचार करें, तो 'सज्जन' के युधिष्ठिर–सा चरित्र की आज भी आवश्यकता है। 'करुणालय' पुत्र और पिता के अधिकार और धर्म की याद दिलाता है। इसके बाद के नाटकों में अतीत की झलक स्पष्टतः दिखाई देती है। 'जन्मेजय का नागयज्ञ' दो जातियों के संघर्ष को दिखाता है। आज भी भारत जातीयता के उस बिंदु पर खड़ा है, जहाँ यह संघर्ष हमेशा देखने को मिलता है। 'प्रायश्चित' में कर्म और परिणाम दोनों की साथ ही परिणति हुई है। 'अजातशत्रु' में पारिवारिक कलह और द्वेष को दिखाया गया है, जो आज भी विद्यमान है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को माननेवाले प्रसाद ने 'राज्यश्री' और 'विशाख' में धर्म की अतिशयता को अस्वीकार किया है। 'ध्रुवस्वामिनी' में वर्तमान नारी का चित्रण हुआ है, जो अधिकार की लड़ाई लड़ती है। वह सड़ी–गली मान्यताओं पर चोट ही नहीं करती, बल्कि अपना मार्ग भी स्वयं निश्चित करती है। 'चन्द्रगुप्त' में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की कितनी सुंदर व्याख्या प्रस्तुत की गई है, जिसमें साध्य को महत्त्व दिया गया है साधन कैसा भी हो। 'स्कन्दगुप्त' में आंतरिक कलह, प्रेम और देशप्रेम की अद्‌भुत सृष्टि की गई है।

रचनाकार डॉ. वर्मा का मानना है कि इतिहास को केंद्र में रखकर साहित्य लिखनेवाले रचनाकारों के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती है कि वह इतिहास की गरिमा को सुरक्षित रखें और वर्तमान को जीवित, इस क्षेत्र में प्रसाद कुशल शिल्पी थे। इन्होंने इतिहास का अध्ययन भी किया और वर्तमान की समस्याओं का अनुशीलन भी किया। पाश्चात्य विद्वानों को जहाँ हमारा इतिहास सिर्फ कपोल–कल्पना दिखाई देता था, वहीं प्रसाद जी ने उसे प्रमाणित, सिद्ध करते हुए उसके गौरवमयी इतिहास को प्रस्तुत किया है। इनके नाटकों की एक प्रमुख विशेषता और है कि वे मुख्य कथा के साथ–साथ कई प्रासंगिक कथाओं की सृष्टि करते हैं। इसके पीछे इनका

एक ही मन्तव्य है विस्तृत फलक की स्थापना।

प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने नाटक, कहानी, निबन्ध, उपन्यास और कविता के क्षेत्र को साहित्य का विषय बनाया। एक और रोचक बात है कि उन्होंने नाटकों में काव्य की रचना की है। नाटकों में गीत की सृष्टि करके नया प्रयोग स्थापित किया है। इनके नाटकों में जिन गीतों की सृष्टि हुई है, वह भी छायावादी परिधि से बँधी हुई है। इन्होंने गीतों के माध्यम से भारतवासियों के आत्मबल को बढ़ाने का प्रयास किया है। परतंत्रता की नींद में सोए देशवासियों को जगाना अपना परम कर्तव्य समझा। इनके भावों में अनेक दर्शनों के सामंजस्य देखने को मिलते हैं। कहीं बौद्ध, कहीं शैव, कहीं डार्विन, तो कहीं समरसता की ओर आकर्षित लगते हैं। इनके गीतों में भक्तिपरक गीतों की भी विविधता है। इन्होंने नये–नये उपमानों का प्रयोग किया है। ज्यादातर इनके उपमान प्रकृति से हैं। प्रकृति का मानवीयकरण भी इनके शिल्प की नवीन विशेषता है। इनके नाटकों की भाषा में मौलिकता है। वाक्चातुर्य के साथ–साथ देश–काल का भी पूरा ध्यान रखा गया है।

इस प्रकार देखा जाय तो रचनाकार डॉ. अरुण कुमार वर्मा ने प्रसाद जी के इतिहास, कल्पना और काव्य का समुचित समालोचनात्मक परिधि में उनके समस्त नाटकीय सौंदर्य, मानवीय संवेदना के सम्बन्ध, अतीत में वर्तमान की झलक, कल्पनात्मक विशेषता तथा उनकी दार्शनिकता का समावेश अपनी इस पुस्तक में किया है। निश्चित ही पाठकों को इनकी यह कृति प्रिय लगेगी। पुस्तक की सफलता हेतु मेरी भी शुभकामनाएँ हैं।

प्रकाशक– आदर्श प्रकाशन, संगम विहार, नई दिल्ली, मो. 8700387872, लेखक का सम्पर्क सूत्र – 9754128757

ग़ज़लें

विज्ञानव्रत
एन 138, सेक्टर 25
नोएडा 201301
मो.–9810224571

जिस्म जिसका है बयाँ मुझमें
कौन हे ये बेज़बाँ मुझमें

जो रहा होकर कभी मेरा
वो मिलेगा अब कहाँ मुझमें

था सितारों से कभी रौशन
क्या हुआ वो आसमाँ मुझमें

जो बनाया था कभी तूने
अब नहीं वो आशियाँ मुझमें

डूबने का शौक़ था तुमको
लो हुआ दरिया रवाँ मुझमें

मुझको अपने पास बुलाकर
तू भीअपने साथ रहा कर

अपनी ही तस्वीर बनाकर
देख न पाया आँख उठाकर

वे–उन्वान रहेंगी वर्ना
तहरीरों पर नाम लिखाकर

सिर्फ़ ढलूँगा औज़ारों में
देखो तो मुझको पिघलाकर

सूरज बनकर देख लिया ना
अब सूरज–सा रोज़ जला कर।

और सुनाओ कैसे हो तुम
अबतक पहले जैसे हो तुम

अच्छा अब ये तो बतलाओ
कैसे अपने जैसे हो तुम

यार सुनो घबराते क्यूँ हो
तो फिर जैसे–तैसे हो तुम

ऐशपरस्ती? तुमसे? तौबा!
मज़दूरी के पैसे हो तुम।

.

मुझ पर कर दो जादू–टोना
एक नज़र ऐसे देखो ना

इतने दिन में घर आये हो
घर जैसे कुछ देर रहो ना

बादल हो तुम या खुशबू हो
बरसो खुलकर या बिखरो ना

ढूँढ़ न पाया खुद को घर में
छान चुका हूँ कोना–कोना

तुमसे खुद को वापस क्या लूँ
रखो अब तुम ही रख लो ना।

ख़ामोशी मेरी जवाँ है,
वो मगर सुनता कहाँ है

सामने हैं आप लेकिन,
आप तक रास्ता कहाँ है

जानता हूँ दुश्मनों को,
फिर मुझे ख़तरा कहाँ है

छोड़िये भी मुस्कुराना,
दर्द चेहरे से अयाँ है

ढूँढ़ना क्या है तुझे अब,
मैं जहाँ हूँ तू वहाँ है।

समीक्षा

आगे से फटा जूता

अंजनी श्रीवास्तव
वीरा इंडस्ट्रियल एस्टेट ऑफ न्यू लिंक रोड
अंधेरी वेस्ट, मुंबई (महाराष्ट्र)
9819343822

''भावनाओं, संवेदनाओं और दार्शनिकता का सम्मिश्रण''–'आगे से फटा जूता'। आपको सड़क के किनारे और कूड़े करकट की ढ़ेर में पड़ा हुआ नजर आ सकता है। संवेदनशील व्यक्ति के अलावा कोई उसे तवज्जो नहीं देता, क्योंकि वह आदमी के संघर्ष का चश्मदीद गवाह होता है। वह एक लंबे समय तक आपके पाँवों से लिपटा आपकी सुरक्षा करता रहता है। जीर्ण–शीर्ण अवस्था को प्राप्त होते ही आप उसे त्याज्य बना देते हैं। एक प्रबुद्ध लेखक उसकी दुरावस्था देखकर व्यथित हो जाता है और उसे उसमें भी बहुत कुछ दिखाई पड़ने लगता है। अपना लेखन धर्म निभाने के लिए राम नगीना मौर्य ने 'आगे से फटा जूता' को कथासंग्रह में मौजूद बाकी कहानियों का नेतृत्व सौंपकर अपनी ईमानदारी का परिचय दिया है। श्री राम नगीना मौर्य की इसके पूर्व भी कुछ कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। अब तक उन्होंने अच्छी–खासी ख्याति भी अर्जित करती है और कई महत्त्वपूर्ण पुरस्कार भी हासिल किए हैं।

कथा संग्रह 'आगे से फटा जूता' अपने सटीक नामकरण के जरिए लेखक की संवेदनशीलता और बौद्धिकता का परिचायक बनने का महती कार्य कर जाता है। नजाकत और नफासत के शहर लखनऊ में रहते हुए भी कथाकार उस मुकद्दस मिट्टी के सीधे संपर्क में है, जिसे हम गाँव छोड़ते ही भूल जाते हैं।

इस कथा संग्रह में कुल ग्यारह कहानियाँ हैं। संख्या ग्यारह को एक शुभ अंक माना जाता है, जो इस संग्रह को अपार लोकप्रियता दिलाने का संकेत देता है।

जिंदगी के आईने में अपने अनुभवों का अक्स वो हर आदमी देखना चाहता है, जिसके अंदर दूसरों के दर्द से स्पंदित होनेवाला एक नरम दिल होता है। इस संग्रह की हर कथा के पात्र अपनी सरलता साफगोई और संदेशों के ईंट–गारों से पाठकों के जेहन में अपना आशियाना बना लेते है। जिंदगी के सारे वो इन कथाओं के जिस्म में आबाद है।

'ग्राहक देवता' में फल विक्रेता शकूर भाई की इंसानियत झलकती है, जो व्यवसाय करते हुए भी अपने ग्राहकों को किसी तरह का नुकसान होने देना नहीं चाहते। ग्राहक उनके लिए बड़े महत्त्वपूर्ण है। अगर वो किसी कारणवश दुकान में आकर लौट जाएँ, तो उन्हें बहुत दुख होता है। शकूर भाई अपनी महानता का स्तूप तब खड़ा कर देते हैं, जब उनका एक ग्राहक उनको हुए नुकसान की भरपाई हेतु अपनी जरूरत से ज्यादा फल खरीदना चाहता है। उन्हें इस बात की भी चिंता है कि ग्राहक द्वारा खरीदे गए फल खराब होकर ग्राहक का नुकसान न कर दें। वैसे अब दुनिया में ऐसे शकूर भाई होंगे भी कितने? एक को तो आखिर लेखक ने पकड़ ही लिया है।

'पंचराहे पर' कहानी में लेखक लोगों की भीड़, उनकी फितरत, मोलभाव करने की आदत और दूसरों की कमियों पर टिप्पणी करने के मानवीय स्वभाव का सजीव चित्रण किया है। ऐसा लगता है, जैसे पाठक उस पंचराहे पर खड़ा सब कुछ अपनी आँखों से देखता हुआ वहाँ मौजूद लोगों से गुफ्तगू कर रहा है। चौराहे से आगे पंचराहे की परिकल्पना भी लेखक की ही लगती है।

इस पुस्तक की तीसरी कहानी लिखने का सुख यद्यपि लम्बी है, पर इसे पढ़ते हुए कवियों के बारे में प्रचलित जुमता जहाँ न जाए रवि, वहाँ जाए कवि बार–बार याद आने लगता है। यह जुमला लेखकों पर भी मौजूँ बैठता है। राम नगीना जी ने मानव मन में चल रही हलचलों का सूक्ष्म और बहुत ही बेहतरीन विवेचन किया है। कहानी की घटनाएँ एकदम सामान्य है। स्कूटर का स्टैंड पर होना, सड़क पर चलना, उसका बिगड़ना, उसकी मरम्मत, टंकी में पेट्रोल न होना और दूसरों के घरों में झाँकने के आदी लोगों को भी लेखक ने बहुत करीब से पहचाना है। अभिव्यक्ति की बारीकियाँ देखने के लिए इस किताब को पढ़ना जरूरी है।

'साँझ–सवेरा' जीवन के उतार–चढ़ाव और सुख–दुख की नैया खेता हुआ पाठकों से रू–ब–रू होता है। आदमी की छोटी– मोटी इच्छाओं के जगने की आहट भी लेखक को मिल जाती है। लेखक इस अंदाज में पात्रों का चरित्र–चित्रण कर रहा है, जैसे उनकी हर क्रिया लेखक के निर्देश पर ही संपादित होती हो।

'उठ मेरी जान' में लेखक ने अपने स्कूली दिनों की सहपाठिनी गौरी के माध्यम से उसके दुख और पीड़ा पर रोशनी डाली है। एक लंबे समय से वो मायके में पड़ी है। ससुराल वालों के अलग टंटे हैं, मायके वाले भीतर–ही–भीतर खौल रहे हैं। उनके अंदर भी ईगो है, मगर गौरी की जिंदगी इस तरह तो बेमानी ही रह जाएगी। लेखक उसकी मनोव्यथा को बड़ी सफाई से उकेरता हुआ उसे जीवन में कुछ विशेष कर डालने की स्थिति में पहुँचा देता है।

ऐसा कुछ भी नहीं कि लेखक ने कहीं से कोई नीरस विषय उठाकर पन्ने रंग दिए हों। उन्होंने कुछ भी चमत्कारिक, नूतन या अनछुए विषय पर हाथ नहीं रखा। आप दिन–रात जो देखते रहते हैं, मगर पकड़ नहीं पाते। आपकी जगह लेखक ने मुद्दों को उठा लिया है। लेखक किसी वर्ग विशेष को अपना विषयवस्तु नहीं चुनता और सबके साथ न्याय करता है और सबसे बड़ी बात यह है कि जो सबको नहीं दिखता, वो लेखक देख लेता है। जो किसी को ढूंढे नहीं मिलता, उसे लेखक अपनी मुट्ठियों में कैद कर लेता है, कब–कहाँ उसे क्या दिख जाए, क्या पता? 'ढाक के तीन पात' में लेखक ने दफ्तरों में काम करने वाले लोगों की आदतों एवं फितरतों को कैप्चर किया है। बॉस की दहशत, नौकरी का डर, फिर भी नौकरी के प्रति लापरवाही, किसी आगंतुक या सहकर्मियों के साथ व्यवहार का जो खाका खींचा गया है, उससे हम प्रायः रोज ही रू–ब–रू होते रहते हैं, मगर उन्हें बटोरकर अपनी रचनात्मक झोली में रखने का काम इस पुस्तक का रचयिता बड़ी सफाई से कर लेता है।

'ग्राहक की दुविधा' ग्राहकों पर केंद्रित दूसरी कहानी है। 'ग्राहक देवता' में ग्राहकों के प्रति एक फल विक्रेता की ईमानदारी दिखती है, तो प्रस्तुत कहानी में लेखक विक्रेताओं के अलग–अलग चरित्र से परिचित कराता है। इसमें सब्जीवाली मोची आदि के अपने–अपने जलवे बिखेरते दिखते हैं। ग्राहक की दुविधा यह है कि वो किससे खरीदे, मगर सही चीज खरीदे। इस दुविधा से हम रोज दो–चार होते रहते हैं। लेखक ने काल्पनिकता को कहानियों में तनिक भी प्रश्रय नहीं दिया। पाठक इस बात से इंकार नहीं कर सकते कि ग्यारह की ग्यारह कहानियों में वही सब है, हम रोज जिससे रू–ब–रू होते रहते हैं। 'ऑफ स्प्रिंग' में लेखक ने टॉयलेट, कमोड

और पर्दे को जोड़कर एक अनूठे विषय पर ही अपनी लेखकीय हुनर दिखा दी है।

'गड्ढा' एक तरह से एक गढ़े की आत्मकथा ही है। गढ़े से परेशान सभी है, मगर गड्ढा भरने के लिए कोई तैयार नहीं होता। लेखक ने इस कहानी में पगडंडियों, सड़क, डिवाइडर एल–मोड़, स्पीड ब्रेकर–सबको लपेटे में ले लिया है। आप इनमें से हर कहानी से और बड़ी आसानी से अपना सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं।

'परसोना नॉन ग्राटा' का सामान्य अर्थ होता है–वह व्यक्ति जो स्वीकृत न हो। इस कहानी में लेखक ने मोबाइल के कीड़े लोगों, जिनको फोटो खींचने–खिंचवाने और सोशल मीडिया पर डालने का जुनून–सा होता है, उन पर फोकस किया है और उनके क्रिया–कलापों का वर्णन करते हुए अंततः उनकी इस लत को खारिज भी कर दिया है।

अब बारी है–'आगे से फटा जूता' पर कुछ कहने की। यह कथा संग्रह की सर्वाधिक लंबी और प्रतिनिधि कहानी है। अगर इसमें दम न होता, तो किताब का उन्वान न बनता।

'आगे से फटा जूता' ने आदमी का सारा भार सहते हुए उसे लंबा सफर कराया है। उसके पाँव की रक्षा की है। जीवन तो सबकी जानी है। जब हम जूते खरीदते हैं, तो विक्रेता उसकी लाइफ कितनी हो सकती है, यह भी हमें बताता है यानी उसकी भी लाइफ होती है। कुछ लोग अपनी मजबूरियों की वजह से उसका परित्याग नहीं कर पाते। 'आगे से फटा जूता' सबके नसीब में होता भी कहाँ है? आदमी कहाँ–कहाँ गया, यह जूते को ही पता होता है। दूसरों को लंबी सफर पर ले जानेवाले जूते का अंतिम सफर बतौर एक लावारिस पूरा होता है।

प्रस्तुत कहानी भावनाओं, संवेदनाओं और दार्शनिकता का सम्मिश्रण है। पुस्तक पहली फुरसत और एक बैठक में पढ़ी जाने योग्य है। विचारों के तिनकों को जोड़–जोड़कर एक कहानी या पुस्तक का आकार देना कोई साधारण काम नहीं, पाठकों के लिए इसे पढ़ना इसलिए जरूरी है, क्योंकि इसकी ग्यारह की ग्यारह कहानियाँ आपकी ही हैं।

अंततः वास्तविकताओं से वाबस्ता एक पठनीय और संग्रहनीय किताब।

पुस्तक का नाम : आगे से फटा जूता, लेखक–राम नगीना मौर्य
प्रकाशक–रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, पेज 132, मूल्य 200

कविताएँ

सागर तोमर
ग्राम–बाफर, पो.–जानी खुर्द
जिला–मेरठ (उ.प्र.)
मो.–9756160288

लिखने से पहले

कविता लिखने से पहले
मैं कुछ सीखना चाहता हूँ लिखने की कला
कि धरती अपना धीरज कैसे लिखती है
या कि लिखने के लिए जरूरी है
धरती–सा धीरज होना

कविता लिखने से पहले
मैं सूरज–सा तपना चाहता हूँ
या कि तपने के लिए
सिर्फ सूरज होना काफी है

कविता लिखने से पहले
मैं चाहता हूँ रेत हो जाना
या कि रेत की नियति मुझे सह्य नहीं
क्योंकि मैं अखंड हूँ

कविता लिखने से पहले
मैं चाहता हूँ एक अबोध बालक की हँसी
या कि मुझे डर है
कि 'बोध' ही अंततः दुःख है

कविता लिखने से पहले...
मैं केवल
'मैं' होना चाहता हूँ।

2

क्योंकि मैं सूर्य हूँ
मैं उगता हूँ, मैं चढ़ता हूँ
मैं जल–जलकर चमकता हूँ
डूबना भी मुझी को पड़ता है
क्योंकि में सूर्य हूँ।

मैंने भोगी है परिवर्तन की
अनन्त ज्वलन्त यात्रा
यही जलता हुआ परिवर्तन मेरी पूँजी है
इस पूँजी का समान वितरण
करना मुझी को पड़ता है
क्योंकि मैं सूर्य हूँ

मैं ही तो हूँ सृष्टि का मूलाधार
मेरे बिना तुम्हारे कल्प–विकल्प क्या है?
तुम्हारी सर्द विचारों से भरी दुनिया को
भावों का ताप
देना मुझी को पड़ता है
क्योंकि मैं सूर्य हूँ।

प्रिया देवांगन 'प्रियू'
पंडरिया, कबीरधाम
छत्तीसगढ़

आया वसंत

आया वसंत का राजा है, झूम उठे हरियाली
पेड़ों पर बैठे हैं पंछी, चहके डाली–डाली
मोर आ गये आमों पर, महक लगे सुहानी
गीत गाते बच्चे सारे, दादी सुनाये कहानी
इतराती है तितली रानी,फूलों पर बैठ जाती
बड़े मजे से अपनी धुन में, गीत मधुर है गाती
मौसम लगे बड़ी सुहानी, जब वसंत आ जाए
खेले कूदे बच्चे सारे, पंछी भी चहचहाये।
————

समीक्षा

जनचेतना की संवाहक : 'गांधी दौलत देश की'

डॉ. प्रदीप उपाध्याय
16, अम्बिका भवन, उपाध्याय नगर
मेंढकी रोड, देवास, म.प्र. 455001
मोबाईल 9425030009

महात्मा गांधी के जीवन पर आधारित खंड काव्य 'गाँधी दौलत देश की' ख्यात व्यंग्यकार एवं कवि ओम वर्मा की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसके पूर्व वर्ष 2017 में ओम जी का एक व्यंग्य संग्रह आपके कर–कमलों से प्रकाशित हो चुका है। उनके व्यंग्य दोहे, ग़ज़लें विभिन्न समाचार पत्र–पत्रिकाओं में सतत रूप से प्रकाशित होती रहती हैं, साथ ही नियमित स्तम्भों में भी उनकी उपस्थिति दर्ज होती रहती है। इस दृष्टि से भी ओम वर्मा साहित्य के क्षेत्र में एक जाना पहचाना नाम है। वैसे महात्मा गाँधी पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है और वर्तमान दौर में भी लिखा जा रहा है। गाँधी की प्रासंगिकता तब भी थी यानी स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व में तथा इसके पश्चात् भी रही है। वैसे यह कहना भी उपयुक्त होगा कि गाँधी की प्रासंगिकता आज के दौर में और अधिक हो गई है। गाँधी केवल एक व्यक्ति ही नहीं थे, बल्कि कहें कि वे एक विचारधारा, एक विचार प्रवाह, एक विचार सूत्र थे, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। महात्मा गाँधी को प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी–अपनी दृष्टि से देखा है, तब हो सकता है कि कहीं पूर्वाग्रह हो या कहीं दुराग्रह हो, कहीं सकारात्मक पक्ष उभरकर आता है, तो कहीं कुछ नकारात्मक पक्ष भी उभरता है। बहरहाल, गाँधी दर्शन मूलरूप से भारतीय दर्शन का ही प्रतिरूप परिलक्षित होता है।

पुस्तक पर डॉ. रवीन्द्र कुमार, पूर्व कुलपति, चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ ने अपने संदेश में लिखा भी है– ''कथनी और करनी में लगभग एकरूपता से बना महात्मा गाँधी का जीवन ही सजातियों के लिए उनका संदेश था; समय और परिस्थितियों की माँग के अनुरूप अपने परिष्करण परिमार्जन की स्थिति में वह दीर्घकाल तक अनुकरणीय और प्रासंगिक रहेगा।

आगे उन्होंने यह भी लिखा है कि महात्मा गाँधी के मार्ग की यही विशाल स्वीकृति वह उसकी श्रेष्ठता संसार भर के प्रबुद्ध वर्ग–रचनाकारों, लेखकों, विद्वानों व साहित्यकारों के लिए आकर्षण का विषय है। प्रबुद्धजन सामान्यतः आदर के साथ, महात्मा गाँधी के जीवन और कार्यों को उनके परलोक–गमन के सात दशकों के बाद भी अपने–अपने ढंग से प्रस्तुत करते हैं, अपने शोध का विषय बनाते हैं। यह अपने आपमें अभूतपूर्व है। गाँधीवादी डॉ. मनोज मीता ने पुस्तक में अपने शुभकामना संदेश में लिखा है– कि ''गाँधी एक नाम, सौ अफसाने हैं। आज गाँधी को बिना पढ़े बोलनेवालों की बड़ी तादाद है। जबकि गाँधी को पढ़ना स्वयं की खोज है। सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय के 100 खंड लगभग पचास हजार पृष्ठों में है। वे जो सोचते थे, वही बोलते थे। वे जो बोलते थे, वैसा करते थे। जैसा देखते थे, उसे लिखने में थकते नहीं थे।''

''और फिर भी लोग गाँधी पर प्रश्न करते हैं। तब गाँधी थे, तो वे जवाब देते थे, वे अकेले बोलते थे, लाखों सुनते थे। उनकी इच्छा 125 वर्ष जीने की थी। उन्होंने कहा था कि मैं अपनी कब्र से बोलूँगा। आज वह चरितार्थ हो रहा है। तब वे अकेले बोलते थे, लाखों सुनते थे। आज अनगिनत बोल रहे हैं और करोड़ों गाँधी को सुन रहे हैं। आज बोलना जरूरी है, यह सबसे मारक हथियार है किसी लड़ाई का और उसी मारक हथियार को और मजबूत करता है। श्री ओम वर्मा जी के द्वारा लिखित खंड काव्य 'गाँधी दौलत देश की' में लगभग सात सौ से अधिक दोहे संकलित हैं। जीवन से मरण तक विस्तृत वर्णन संकलित है। यह खंड काव्य गाँधी को उसी तरह जनमानस में प्रतिष्ठापित करेगा, जिस तरह तुलसीदास ने रामचरितमानस के द्वारा गाँधी के आराध्य राम को घर–घर पहुँचाया, उसी तरह यह खंड काव्य भी गाँधी को आम जनमानस तक पहुँचाएगा।''

प्रमुख गाँधीवादी विचारक रजनीकांत झा ने भी अपने सदेश में लिखा है कि ''आज भी गाँधीजी का पथ, उनका सत्याग्रह हमारी राह देख रहा है। इसे सफल बनाना हर नागरिक का कर्तव्य है। यह कर्तव्य साहित्य का भी है, साहित्यकार का भी, जिसे ओम वर्मा जी बखूबी निभा रहे हैं। गाँधीजी के चेहरे को नहीं, उनके दिखाए रास्ते को दिखाना जरूरी है। ओम जी ने ऐसा ही किया है।''

यहाँ ओम वर्मा को उल्लेखित करना भी प्रासंगिक होगा। उन्होंने अपनी बात में लिखा है–''पूरे खंड काव्य में कुल 786 दोहे हैं। दोहा क्रमांक 001 से लेकर 774 तक मैंने उनके जीवन के घटनाक्रम पर उनके कथन तथा विचार को दोहे के रूप में ढालने का प्रयास किया है। 775 वें दोहे में गाँधी के निधन पर पं. जवाहरलाल नेहरू का 'जीवन से रोशनी का चले जाना' का संदेश है। 'गाँधी कल और आज' शीर्षक से अंतिम 11 दोहे वे हैं, जो मेरे विचार हैं। मेरे इस विनम्र प्रयास को अहिंसा के इस पुजारी की शान में कोई गुस्ताखी न समझते हुए श्रद्धा सुमन ही समझा जाएगा, ऐसा विश्वास है। अपने इस कार्य के लिए मेरा मानना है कि–

''गाँधी पर लिखने चला, हुआ मुझे अहसास
दीप दिखाने मैं गया, खड़ा सूर्य था पास।''

यह सही है कि गाँधी पर अबतक अन्यानेक लेखकों, विचारकों, साहित्यकारों ने गद्य और पद्य रूप में बहुत कुछ लिखा है और स्वयं गाँधीजी का अपना स्वयं का लिखा दर्शन भी उपलब्ध है, लेकिन ओम वर्मा द्वारा दोहों में लिखा गया खंड काव्य 'गाँधी दौलत देश की' अपने आपमें अनुपम और पहला प्रयास है, जो इसे एक अलग स्थान पर ले जाती है। हालाँकि मशहूर शायर अकबर इलाहाबादी ने 'शाहनामा' की तर्ज पर 'गाँधीनामा' लिखा; लेकिन यह उर्दू जुबान में है। इस परिप्रेक्ष्य में ओम जी का हिंदी में गाँधी पर दोहों में खंड काव्य रचना पहला एवं उल्लेखनीय प्रयास है। रचनाकार ने गाँधीजी के जन्म से लेकर मृत्यु तक हरेक प्रसंग को दोहों में समेटा है। 'गांधी दौलत देश की' की शुरूआत में उन्होंने लिखा है–

''एक महामानव हुआ, गाँधी मोहनदास।
दोहों में लिखने चला, ओम आज इतिहास।।

गाँधीजी के जन्म पर लिखा दोहा द्रष्टव्य है–

''सदी रही उन्नीसवीं, उनहत्तरवाँ साल।
अक्टूबर की दूसरी जन्मा अद्भुत लाल।।

इसी तरह से गाँधीजी के जीवन के घटनाक्रम को सिलसिलेवार उन्होंने क्रमबद्ध रूप से दोहाबद्ध किया है। इसके अलावा कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाक्रमों को पृथक् शीर्षक के साथ लिखा है; यथा–नमक सत्याग्रह (दांडी मार्च), गोलमेज कांफ्रेंस, गाँधी और सुभाष, गाँधी और आइंस्टीन, बिड़ला हाउस में प्रार्थना।

अंत में पूर्णाहुति के रूप में 'गाँधी कल और आज' शीर्षक देकर समापन किया गया है, जिसमें कवि ने अपने आंतरिक भावों को बहुत खूबसूरती से अभिव्यक्त किया है। यहाँ कवि का व्यंग्यकार रूप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इसकी बानगी निम्नांकित दोहों में द्रष्टव्य है–

''अक्तूबर की दूसरी, माह जनवरी तीस।

दो दिन गाँधी देवता, बाकी दिन वो पीस।।''
''गाँधी दौलत देश की' नंबर है फ्री टोल।
चल न सके जिसपर कभी, मोल तोल के बोल।।''
''कुछ ने गाँधी नाम को, बना रखा है ढाल।
सत्य जिन्हें त्यागे हुए, गुजर चुके कुछ साल।।''
''गाँधी है उनके लिए, वह सिक्का कलदार।
जिसे चलाकर वोट का, करते कारोबार।।''

आज जब हिन्दुस्तान ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व में आतंकवादी घटनाएँ हो रही है, हिंसा का खुला खेल खेला जा रहा है, नफरत की विषबेल फैल चुकी है, वहाँ गाँधी और उनके दर्शन का जन–जन तक पहुँचना और भी जरूरी हो गया है। ओम वर्मा ने लिखा है–

''लाठी को अपना लिया, बिसरा दिए विचार।
गाँधी के घर कर रही हिंसा फिर अधिकार।।''
''प्रासंगिकता आज भी, है जिसकी मौजूद।
गाँधी दर्शन है जहाँ, वहाँ फेल बारूद।।''

और अंत में उन्होंने लिखा है, वह कृतघ्न पीढ़ी के लिए बहुत बड़ा संदेश है–

''छापा हमने नोट पर, दिल पर बनी न छाप।
जिस दिल में यह छाप हो, वहाँ पनपे न पाप।।''

निःसंदेह आज के भटकाववाले दौर में 'गाँधी और उनका दर्शन' और अधिक प्रासंगिक हो गया है। ओम वर्मा द्वारा लिखा गया–खंड काव्य गाँधी के जीवन एवं दर्शन के माध्यम से जनचेतना जगाने का एक अच्छा प्रयास है। महात्मा गाँधी के जीवन, कार्यों और विचारों को जन–जन तक पहुँचाने की दिशा में ओम जी का यह प्रयास उल्लेखनीय है। इस हेतु ओम जी साधुवाद के पात्र हैं। निश्चित ही पाठक वर्ग को उनकी पुस्तक 'गाँधी दौलत देश की' को बेहतर प्रतिसाद मिलेगा। हार्दिक शुभकामनाएँ।

समीक्ष्य पुस्तक–'गाँधी दौलत देश की' खंड काव्य
लेखक ओम वर्मा, 100 रामनगर एक्सटेंशन,
देवास (म.प्र.)–455001, मो.–9302379199

कविताएँ

अनामिका सिंह 'अना'
स्टेशन रोड गणेशनगर, शिकोहाबाद, जिला–फिरोजाबाद
मो.–9639700081

बही वाम नदिया की धारा

श्वास–श्वास हो जैसे गिरवी,
पलक बंद थमती है नाड़ी

विस्मय से खगकुल है सारा,
कहाँ घोंसले चले गये हैं
चील बाज का काम नहीं है
आखेटक से छले गये हैं

फँसे फरेबी के जालों में
हाय पखेरू निपट अनाड़ी।

टहनी के पत्ते काँपे फिर
फुनगी भय से पड़ी है पीली
जमा शिरा में बहता नापी
फूलों की तबियत है ढीली

जिस शाखा से मूठ बनी थी
उसी मूल जब चली कुल्हाड़ी

रहे खेत थे जहाँ उपासे
बही वाम नदिया की धारा
नौकाओं से गुटबंदी की
डूबे को न मिला किनारा
दो सौ ऊपर मरे पचासी
दिखी न दौरे वाली गाड़ी

काया लटक गई

बाँध गले में रस्सी छत से
काया लटक गयी

रची शगुन की मेंहदी कर में
जरा न पायी सूख
भाँवर वाले वचन बन गये
फिर दहेज की भूख

हरी चूड़ियों की भाषा क्यों
इतनी खटक गयी

नियति परिधि में रही पनपती
मुक्त सुकोमल दूब
डोली में चढ़ते ही कैसे
गयी नदी में डूब

फिर दहेज की भूख नवेली
को ही गटक गयी

दोहरे दिखते मानदंड है
दोहरे सभी चरित्र
समय–समय पर सच समाज का
दिखता सच्चा चित्र

चिंतन की धारा प्रवाह से
छिटकी भटक गयी।

डॉ. नीना छिब्बर
जोधपुर राजस्थान 342008

मेरी माँ भी रानी है

मेरी माँ भी रानी है, झाँसीवाली रानी है
दो पहिया वाहन की लगाम पकड़कर फर–फर चलती है
मुझे पेट पर औंधा बाँधे हरदम बढ़ती रहती है
लिपे–पुते चेहरे के पीछे, अपनी ह्रास छुपाती है
एड़ी की खटखट के भीतर, पायल की झुनक बजाती है
मेरी माँ भी रानी है

नहीं सुनाती वो मुझको राजा रानी की कपोल कहानी
बन्दर–बाँट, चतुर लोमड़ी और
नीले सियार की कथा बताती हैं
मैंने तो जाना है कब से शोर और चुप्पी का अर्थ
ऊँगली की जकड़न से ममता और क्रूरता का मर्म
मेरी माँ भी रानी है

सीखा होगा अभिमन्यु ने गर्भ में चक्रव्यूह का ज्ञान
मैंने तो पालने पर भीतर भोगा है यथार्थ का दंश
लोरी की धुन के बदले बस वाहनों की खड़खड़
अनचाहे अनचिन्हें सुख और दुख का मिश्रित दंश
मेरी माँ भी रानी है

सुनकर मेरा रुदन दिल उसका फटता तो होगा
पर आँतों की चक्की के आगे किसका बस चलता होगा
गुंजे मेरे कानों में, हरपल दोलायमान होनेवाली माँ का स्वर
सहती वो लोगों की हास्यदृष्टि–कभी भग्नदृष्टि का रूप
एक नयन में रचे नीर है, दूजे में शून्यता का कीच
मेरी माँ भी रानी है

सबको आँचल में समेटे हरदम आगे बढ़ती रहती
थके कदमों में स्फूर्ति भरती, हँसती रोती चलती फिरती
फिरकी सी घुम–घुम अपने की अक्षों में फिरती
कभी अहिल्या, कभी सावित्री, कभी सबला नारी है
एक हाथ में मेहन्दी रचती,दूजे में गुड़धानी है
मेरी माँ भी रानी है।

समीक्षा

सबसे उपेक्षित वर्ग : 'गुलाबी गलियाँ'

मनोरमा पंत
पता–85 इस्टेट बैक कॉलोनी,
ई–अरेरा कॉलोनी भोपाल साई बोर्ड के पास,
1 मो.–9229113195

सुप्रसिद्ध साहित्यकार सुरेश सौरभ द्वारा संपादित लघुकथा संग्रह 'गुलाबी गलियाँ' समाज के सबसे उपेक्षित, तिरस्कृत तथा निन्दनीय वर्ग वेश्याओं के अंतहीन दर्द और वेदनाओं का जीता जागता एक दस्तावेज है। दुःख के महासागर को समेटे हुए इस संग्रह की लघुकथाओं में समाज के दोहरे चरित्र को उजागर करने का ईमानदारी से प्रयास किया गया है। जहाँ एक ओर दिन के उजाले में उन्हें चरित्रहीन तथा समाज का गंदा धब्बा तवायफ, कुलटा जैसे जुमलों से नवाजा जाता है, वहीं दूसरी ओर रात के अँधेरे में वे ही घृणित नारियाँ रम्या बन जाती हैं।

पौराणिक काल से ही 'मनुष्य' शब्द का प्रयोग केवल पुरुष के लिए ही तय किया जा चुका है। औरत को मनुष्य शब्द से निकालकर अलग ही चौखट में जड़ दिया गया। उसके मन की इच्छाओं, भावों और संवेदनाओं को पुरातन काल से ही पुरुष द्वारा नकार दिया गया। इन्द्र द्वारा अहिल्या हरण, भीष्म द्वारा अम्बा, अम्बालिका का हरण आदि उदाहरण हैं। 'गुलाबी गलियाँ' की प्रत्येक लघुकथा में वेश्याओं की यही अंतर्वेदना स्पष्ट रूप से
मुखरित होती दीख पड़ती है।

प्रारम्भ करें संग्रह की प्रथम लघुकथा 'मरुस्थल' से। सुकेश साहूनी की यह एक ऐसी औरत की करुण दास्तान है, जिसके लिये पति ही उसके अस्तित्व का प्रमाण था। उसकी मृत्यु के पश्चात् वह आर्थिक मोर्च पर हारकर चकलाघर पहुँच जाती है। पति के हमशक्ल ग्राहक में अपने पति को खोजने के निरर्थक प्रयास कर अन्त में मर्मान्तक दुःख ही उसके हाथ लगता है।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार राजेन्द्र अवस्थी ने अपनी एक रचना में लिखा है–''औरत के पैरों तले पक्की जमीन होती ही नहीं। उसके सिर पर हमेशा बोझ होता है आर्थिक गुलामी का। पति की मौत होने पर, बीमारी में परिवार का पेट भरने के लिए मजबूर होकर ऐसी औरतें वेश्या बन जाती हैं। इस मजबूरी की तड़प देखने को मिलती है–पूनम (कतरियार) की 'खुखरी', सत्या शर्मा की 'पीर जिया की', सीमा रानी की 'ईमानदारी', महावीर रावांल्टा की लघुकथा 'मदद के हाथ' जैसी लघुकथाओं में।

प्राचीन काल से ही यह देखा गया है कि पुरुष द्वारा निर्मित परिवेश में जो स्त्री स्वयं को नहीं ढाल पाती, अपना अस्तित्व सिद्ध करने की कोशिश करती हैं। परन्तु आर्थिक रूप से सक्षम नहीं हैं, तो अपने पति, प्रेमी, रिश्तेदार यहाँ तक कि पिता, भाई के द्वारा भी चकलाघर पहुँचा दी जाती हैं। रेखा शाह की लघुकथा 'इस देश न आना लाडो' में प्रेमी द्वारा, ऋचा शर्मा की 'निष्कासन' और मनोरमा पंत की 'पेशा' में पति द्वारा, सुधा भार्गव की 'वह एक रात' में पिता के कारण और डॉ. अशोक गुजराती की 'बेटी तू बची रह' में दलाल द्वारा लड़कियों को वेश्यावृत्ति में धकेल दिया जाता है।

'वेश्या का काम है तन से पुरुष को खुश करना। लेखन से उसका क्या वास्ता? मीरा जैन की लघुकथा 'कालम खुशी का' में नगरवधू जैसे ही आत्मकथा के रूप में एक किताब लिखने की घोषणा करती है, तो अगले दिन ही वह लापता हो जाती है। क्यों? पाठक इसे भलीभाँति जानते हैं। यह लघुकथा सभ्य समाज पर एक तमाचा है।

चकलाघर में पहुँच जाने पर भी कुछ वेश्याएँ अपने स्त्रियोचित अस्तित्व को बचाए रहती है। अनिल पतंग की 'मजहब'
लघुकथा में सलमा वेश्या समाज के तथाकथित सफेदपोश सम्भ्रांत जनों को कटाक्ष सहित आईना दिखाती है। वह निडरता से कहती है–''मैं तो सिर्फ शरीर बेचती हूँ, हुजूर! पर आपलोग ईमान के साथ पूरा देश बेचते हैं। आपका और मेरा एक ही मजहब केवल पैसा, पैसा, पैसा।''

भगवान वैद्य की लघुकथा 'असली चेहरा' में वेश्या सुंदरी तल्खी के साथ कहती है–''इस शहर के एक और तथाकथित प्रतिष्ठित व्यक्ति का असली चेहरा लेकर जा रही हूँ।'' रूपम झा की लघुकथा 'गंगाजल' में वेश्या कहती है–''हम तो दुनिया को बात कर अपनी अदाएँ बेचते हैं, लेकिन आप जैसे लोग तो अपनी आत्मा और ईमान बेच लेते हैं साहेब!''

रघुविंद्र यादव के 'चरित्र हनन' में चंपा बाई चिढ़कर बोलती है–''आज के नेताओं के पास चरित्र है ही कहाँ? जिसका कोई हनन कर सके।''

नीरू मितल की एक शानदार लघुकथा है, जिसमें ग्राहक वेश्या से कहता है–''पति और बच्चे के होते हुए तुम्हें यह
सब करने की क्या जरूरत है?'' वह ग्राहक से कहती है–''जरूरत होती है साब...घर की बहुत–सी जरूरतें हैं, कुछ इच्छाएँ भी होती हैं। पति के आगे हाथ फैलाना और मन मसोस कर रह जाना बहुत मुश्किल होता है।''

यह लघुकथा उन लोगों की आँखें खोलने के लिए पर्याप्त है, जो वेश्याओं के ऊपर अपना पैसा लुटा देते हैं और पत्नी की छोटी–छोटी जरूरत पूरी करने के लिए भी उसे पैसा नहीं देते।

दिनेश कुमार थर्रा उठा, यह सोचकर कि पहले पत्नी लड़ती थी, पर अब बहुत समय से खामोश रहती है, कहीं उसकी पत्नी भी तो...? आगे आप समझ ही गये होंगे।

मर्द अपने पुत्र में अपनी परछाईं को देखता है। अतः उत्तराधिकारी को जन्म देने के लिए उसे पत्नी की आवश्यकता पड़ी। मर्द का हमेशा से यही दृष्टिकोण रहा कि उसकी पत्नी, कभी भी किसी गैर मर्द का संग न करे और पवित्र बनी रही, जबकि स्वयं के लिए उसका अपना दृष्टिकोण है कि पत्नी उत्तराधिकारी को जन्म देने के लिए और वेश्या खुशी देने के लिए होती है।

पुरुष की इसी दोहरी मानसिकता को इस संग्रह की लघुकथाओं में बखूबी चित्रित किया गया है। शुचि भवि की लघुकथा 'रजिस्टर्ड तवायफ' में जीनत तवायफ ग्राहक प्रफुल्ल के बटुए से गिरी उसकी पत्नी की फोटो देखकर कहती है–''साहब! किसी और के बटुए में भी यही तस्वीर देखी हैं।'' तो प्रफुल्ल पागल–सा हो जाता है; क्योंकि उसकी पत्नी मर्द के पहले से बने बनाए चौखट में फिट नहीं हो रही थी, ऐसा उसे लगता है, जबकि सच्चाई बड़ी पकीजा थी।

रमेश प्रसून की लघुकथा 'आधुनिक इंडिया' में एक अनुभवी वेश्या व्यंग्यपूर्वक कहती है–''सुनो, कास्टिग काउच, लिव इन रिलेशन, पत्नियों की अदला–बदली क्या वेश्यावृत्ति नहीं?''

''वेश्याओं का जन्म जिन्दगी के अँधियारों में होता है और उसी अँधेरे में खामोशी से अंत भी हो जाता है। पूरी जिन्दगी उनका इस्तेमाल एक

वस्तु की तरह होता है। अदित कंसल की लघुकथा 'चरित्रहीन' में सोनी कहती है–''इस शहर में ऐसा कोई नहीं जो हमारे जज्बात को समझे। सब जिस्म के भूखे भेड़िए हैं।''

इसी तरह के दर्द और वेदना के बोल सुधा भार्गव की लघुकथा 'वह एक रात' में देखने को मिलते हैं। कई लघुकथाओं में वेश्यालय में जन्मे ऐसे बच्चों का जिक्र किया गया है, जो जलालत की जिंदगी से बाहर निकल पाए और एक हसीन मुकाम पर पहुँच गए। बजरंगी लाल की 'वापसी', कल्पना भट्ट की 'बार गर्ल' विभा रानी श्रीवास्तव की 'अँधेरे घर का उजाला' अलका वर्मा की 'मैं ऋणी हूँ'। मंजरी तिवारी की 'एक देवी', जिज्ञासा सिंह की 'आहट', राजेंद्र पुरोहित की 'रंग बदलती तस्वीर' में ऐसे ही बच्चों की तस्वीरें उकेरी गई हैं।

वेश्या से विवाह करके उसे सामान्य जिंदगी देनेवाली आदर्श लघुकथाएँ भी इस संग्रह की शोभा बढ़ाती है। सुधा भार्गव की 'वह एक रात', अभय कुमार भारती की 'कोठेवाली', राजकुमार घोटड की 'कोठे के फूल' में ग्राहक वेश्याओं से विवाह करके उन्हें सम्मानजनक जिन्दगी प्रदान करते हैं।

सत्या शर्मा की लघुकथा 'पीर जिया की' में लिखा है कि उस हाड़–मांस के शरीर के अंदर एक कोमल हृदय भी था, जो न जाने कबसे किसी के लिए तड़पने को बेचैन था, पर वेश्याओं के लिए तो यह सोचा जाता है कि उनका कोई मन ही नहीं होता है।

पढ़िए कुछ चुमते हुए वाक्यांश, जो वश्याओं के लिए कहे जाते हैं। वह एक कलंक है और नए कलंक को जन्म देने जा रही है। ज्ञानदेव मुकेश की 'शूल तुम्हारा फूल हमारा।'

–''तुम्हारा क्या धर्म और क्या जात?'' (गुलजार हुसैन की 'दंगे की एक रात')

–''हर रोज नये–नये मर्द फँसाती है यह।" (कांता राय की 'रंडी' लघुकथा)

–''भगवान के मंदिर को भी नहीं छोड़ा इन लोगों ने। छि:! कैसे लोग हैं, यहाँ भी गंदगी फैलाने आ गए।(डॉ. रंजना जायसवाल की 'कैसे–कैसे लोग')

–''साली को कहीं जगह नहीं मिलती तो यहाँ चली आती है।'' (सिद्धेश्वर की 'आदमीयत')

–''इन लोगों की क्या औकात है, मेरे सामने।''(रुपम झा की 'गंगाजल')

–''चुप रह रंडी। हमसे बराबरी करती है।''(मुकेश कुमार 'मृदुल' की 'चोट'।

–''रास्ते की औरत और गली का कुत्ता कभी इज्जत नहीं पाते।'' रमेशचन्द्र शर्मा की लघुकथा 'कैरेक्टर लेस')

इस संग्रह में अपमानित करनेवाले इन जुमलों को नकारती हुई ऐसे भी अनेक लघुकथाएँ हैं, जो वेश्याओं के उजले पक्ष को समाज के सामने रखती हैं। ये लघु कथाए बतलाती हैं कि जो वेश्याएँ इस गंदगी में फँसी हुई हैं, वे नहीं चाहतीं कि और भी लड़कियाँ उसमें धकेली जाएँ या उनके कारण किसी ग्राहक का घर बर्बाद हो।

इससे संबंधित कमलेश भारतीय की एक खूबसूरत लघु कथा है–'प्यार नहीं करती', जिसमें वह अपने ग्राहक का घर उजाड़ना नहीं चाहती है। इसलिए वह कहती है–''जब मैं एक औरत द्वारा अपना पति छीन लिये जाने का दुख भोग रही हूँ, तब तुम मुझसे यह उम्मीद कैसे करते हो कि मैं अपना घर बसाने के लिए किसी का बसा–बसाया घर उजाड़ दूँगी?''

इसी तरह की और भी लघुकथाएँ हैं, जैसे मिन्नी मिश्रा की 'दलदल'। पूनम आनंद की लघु कथा 'तवायफ', रमाकांत चौधरी की बेहतरीन लघुकथा 'गुलबिया', चित्रगुप्त की 'सीख', ऋचा शर्मा की 'माँ–सी नीना', मंदिलवार की 'नवजीवन', राजकुमार घोटड की 'कोठे के फूल', राजेंद्र पुरोहित की 'रंग बदलती तस्वीर', अरविंद असर की 'उसूल', विजयानन्द विजय की 'धुंधलका छँटता हुआ', अशोक गुजराती की 'बेटी तू बची रह', ज्योति मानव की 'एक गुण' आती हैं।

तन और मन के गहरे भेद को समझाते–बुझाते हुए सुरेश सौरभ की लघुकथा 'गंगा मैली नहीं' में कहा गया है–''गंगा मैली नहीं होती, कभी नहीं होती।'' किसी वेश्याओं के लिए सौरभ जी के भाव पावन व पुनीत हैं।

लेखक गुलजार हुसैन 'दंगे की रात' में वेश्या को कह जाते हैं–'सबसे खूबसूरत औरत' और वह यही नहीं रुकते, वेश्याओं को 'गुलाब की सुंगध' तक कह डालते हैं। ओमप्रकाश क्षत्रिय की लघुकथा 'सफाई' में वेश्या का पावन चरित्र दृष्टिगोचर होता है। डॉ.चन्द्रेश कुमार छतलानी की लघुकथा 'देवी' भी वेश्या का पवित्र रूप दर्शाती है।

इन लघु कथाओं में कुछ लघुकथाएँ ऐसे भी हैं, जिसमें यह दिखाया गया है कि कुछ लेखक / पत्रकार वेश्याओं की जीवनी जानने के लिए कोठे पर पहुँचते हैं, पर उनके जख्मों को कुरेदने के कारण उन्हें अपमानित ही होना पड़ता है। इन लघु कथाओं में भगवती प्रसाद द्विवेदी की 'गर्व' लघुकथा है, जिसमें वेश्याएँ कहती हैं–''हमें बकवास पसंद नहीं, फटाफट अपना काम निपटाओ और फूटो।''

डॉ. सुषमा सेंगर की लघुकथा 'झूठ के व्यापार' में एक बड़े कहानीकार को कहा जाता है–''जिसे देखो, वही मुँह उठाए चला आता है जख्म कुरेदने।''

नज्म सुभाष की लघुकथा 'ग्राहक' में हृदयहीन ग्राहक वेश्या की खराब तबियत की परवाह ही नहीं करता है।... एक कठोर यथार्थ नज्म ने प्रस्तुत किया है।

इस संग्रह की और भी प्रेरणात्मक लघुकथाएँ हैं, जिनमें देवेन्द्र राज सुथार की 'बदचलन', डॉ. प्रदीप उपाध्याय की 'वादा', डॉ. शैलेश गुप्त 'वीर' की 'गुडबाय', सुषमा सिन्हा की 'पापी कौन', अनिता रश्मि की 'असर', अविनाश अग्निहोत्री की 'नातेदार', कल्पना भट्ट की 'बार गर्ल्स', डॉ. पूनम आनंद की 'तवायफ', राजेन्द्र वर्मा की 'बहू', विभा रानी श्रीवास्तव की 'अधर घर का उजियारा', बजरंगी लाल यादव की 'सजना है मुझे' तथा जिज्ञासा सिंह की 'आहट', राजेन्द्र उपाध्याय की 'दृष्टि', पुष्प कुमार राय की 'बार गर्ल्स', नीना सिन्हा की 'निषिद्धौ पाली रज', डॉ. सत्यवीर जी की 'सीढ़ियाँ उतरते हुए', विजयानंद विजय की 'धुंधलका छँटता हुआ' सहित सभी लघुकथाएँ श्लाघनीय हैं। सबसे सुखद यह है कि इस संग्रह की भूमिका प्रसिद्ध साहित्यकार संजीव जायसवाल 'संजय' ने लिखी है। दो उदीयमान साहित्यकार देवेन्द्र कश्यप 'निडर' व नृपेन्द्र अभिषेक 'नृप' ने भी इस दस्तावेजी संग्रह में अपनी छोटी–छोटी विचारोत्तेजक टिप्पणियाँ जोड़कर संग्रह को और भी महत्त्वपूर्ण बना दिया है।

अंत में मैं सुरेश सौरभ जी के संपादकीय शब्द दोहराना चाहती हूँ–''इस साझा संकलन को पढ़ते–पढ़ते वेश्याओं के जीवन, उनके संघर्ष उनके सुख–दुख पर अगर एक व्यक्ति की भी संवेदना जाग्रत होती है, तो मैं समझता हूँ कि इस संग्रह का उद्देश्य पूर्ण हुआ। मेरा श्रम सार्थक हुआ।''

मैं सौरभ जी को इस सुंदर लघुकथा संकलन के संपादन हेतु बधाई प्रेषित करती हूँ। सुंदर आवरण बनाने, किताब को हार्ड बोड के मजबूत बाइंडिंग में प्रकाशित करने के लिए भी मैं श्वेतवर्णा प्रकाशन की मुक्तकंठ से प्रशंसा करती हूँ।

पुस्तक– गुलाबी गलियाँ (साझा लघुकथा संग्रह), संपादक – सुरेश सौरभ, मूल्य– 249 रु. प्रकाशन– श्वेतवर्णा प्रकाशन नई दिल्ली, वर्ष–2023;

समीक्षा

एक और दिन का इजाफा : कविता संग्रह

युगल किशोर प्रसाद
न्यू विग्रहपुर पटना
9279851628

कविवर भगवती प्रसादजी के समीक्ष्य 'एक और दिन का इजाफा' भाव प्रवण तथा वैचारिकता से भरपूर कविताएँ हैं। विचार भाव बनकर उभरे हैं। संग्रह शीर्षक 'एक और दिन का इजाफा' दो पुस्तकों के विस्तार में प्रस्तुत हुए हैं। यह कविता यौवन की देहरी बहुत पहले पार किये एक वृद्ध की दीनहीन दशा को उजागर करती हुई आज के पारिवारिक संबंधों की कलई खोलती है। भगवती बाबू की गद्य–पद्य रचनाओं में उनका जीवन अनुभव बोलता है, जो सोचने–विचारने को उकसाता है, पाठक–मन को झकझोरता है और नए कवियों को सीख देता है कि कविता किस तरह लिखी जानी चाहिए। इस सत्य में भगवती बाबू आचार्य की भूमिका में नजर आते हैं।

अस्तु, उम्र भर का अनुभव समेटे वृद्ध के एक–एक अनुभव को बयाँ करती यह कविता सचमुच 'संग्रह–शीर्षक' के काबिल है। बेचारे अनुभवी वृद्ध की 'ऊँची–सी बात' पर आज के अधकचरे युवक विद्रूप हँसी हँसते हैं और वृद्ध के अनुभव प्रसूत बातें सुनकर उसे 'तोता रटंत/घोंघा वसंत' तक कह डालते हैं। उम्र के ऊँचे पड़ाव पर पहुँचे वृद्ध की नाती–पोतों पर निर्भरता है, जो बना देती है उन्हें हर तरह से परजीवी। स्वाभाविक है कि ''बेचारे अंदर–ही–अंदर कुढ़ते हैं/राख की आग–सी सुलगते/बनकर रह जाते हैं वे/आत्मजीवी और अतीतजीवी....।'' बेचारे अतीत की स्मृतियों में डूबे वे दिन का शेष समय लाचारी की दशा में काटते हैं।'सालता है (उन्हें) अपनों का परायापन'...पता नहीं, क्यों जिंदा हैं वे।' तभी उन्हें दूध पीती उनकी परपोती की किलकारी सुनाई पड़ती है और वे ''एकाएक भर जाते हैं/ अग्नित्व व बालसुलभ उष्मा से/ और हो जाती है उनकी लंबी उम्र में एक और दिन का इजाफा।'' और संग्रह शीर्षक अपनी सार्थकता पा जाती है।

संग्रह की कविता आधुनिक सामाजिक–राष्ट्रीय जीवन की विडम्बनाओं पर व्यंग्य के लहजे में प्रहार करती है। मूल रूप में संग्रह की कविताएँ व्यंग्य कविताएँ नहीं है; किन्तु कवि की भाषा– शैली, कहने का ढंग प्रच्छन्न रूप से व्यंग्य का आभास कराता है। मेरे जैसे अपरिपक्व को बहुत कुछ सीखने को अवसर संगृहीत कविताएँ देती हैं।

'मातृभाषा' कविता मातृभाषा को परिभाषित करती है। कवि ने पाँच स्थितियों में मातृभाषा के अनायास फूट पड़ने का जिक्र किया है। यह कविता 'संडे मेल' दिल्ली में प्रकाशित हो चुकी है। पाँचवीं स्थिति में जिंदगी और जीवंतता की आशा का प्रतीक बनकर 'जुबान पर अनायास रच बस जाती है... हमारी मातृभाषा।' मातृभाषा जिन परिस्थितियों पर जुबान से फूट पड़ती है, उसका सजीव वर्णन कविता की विशेषता है। स्थिति में बछड़ा के डँकरने, माँ गाय के हँकरने, लरकोरी महतारी के स्तनों में बच्चे की रूलाई सुन दूध उतर आता है, उसी तरह जब–तब अनायास ही मिसरी–सी घुलमिलकर अपनी मातृभाषा फूट पड़ती है। पाँचों स्थितियों के अलग–अलग लुभावने विज्ञ हैं, जिसने मातृभाषा के अनायास जुवान पर आ जाने की बात कही है। यह चित्रमय कविता का उत्कृष्ट उदाहरण है। कवि ने उन स्थितियों की कल्पना की है, अनुभव में उतारा है और अनुभूति की चासनी चटाकर पाठकों के लिए परोसा है। गाँव–गँवई की भाषा के प्रयोग से लरकोरी माँ, धुरियाई धरती, टमकता मशीन बना मन, नदी के बहाव के चितों में ग्रामीण जीवन की महत्ता का संचार हो गया है। मातृभाषा सचमुच अनायास ऐसे ही फूटती है।

अन्यत्र 'अपने/बेगाने हैं जिंदगी उदात्त हैं' पंक्तियाँ आई हैं, जो जीवन के यथार्थ का खुलासा करती हैं।

'यहाँ कहाँ सौंदर्यबोध' कविता में प्रकृति के जीवित–मृत उपादानों से बतलाया गया है कि यहाँ सौंदर्यबोध कहाँ है? पूर्व के कवियों ने प्रकृति के सौंदर्य का चित्रण किया है, किन्तु जीवन स्थिति सर्वथा उलट–सी गयी है। अब 'सोन चिरैया से उड़े सपने...अंगूठा दिखाते हैं। कोयलिया मधु ऋतु का अभिनंदन नहीं करती, महानगरों में वनपाँखी सहमे–सहमे आतंकित है, फिर भी अंतिम कड़ियाँ संवेदना से बचे रहने की बात कही गयी है।'फुनगी–फुनगी में, अन्यत्र उदासी के बावजूद 'सिहरन अभी बची हुई है। कवित को रातें शबनम–सी प्रतीत होती है, ओस बरसने के कारण, दिन का सोंधापन स्वभाव को संवेदनशील बनाता है। दो विरोधी स्थितियों में कवि का सामंजस्य बिठाना कवि की कलम का कमाल है।

'भीतर बहती नदी' प्रेयसी को संबोधित प्रतीत होती है। प्रेयसी के लिए अंतर्मन के भीतर बहती नदी सदृश है। मलय पवन, सोन गुही, चंपा की झुकी डाल–सी कवि की प्रेयसी पुष्पवादी है। प्रेयसी अपने हावभाव से नेह–निमंत्रण देती प्रतीत होती है, उसकी अदा अनंग तो भित्ति–चित्रों को सँवारती हुई प्रतीत होती है। और तो और कवि के लिए उसकी प्रेयसी 'रसिक काव्य की चतुष्पदी प्रतीत होती है।

संग्रह की तमाम कविताएँ कविभावना के अलग–अलग चित्र हैं। प्रत्येक कविता के तेवर अलग–अलग हैं, किन्तु कविभाव कहीं बिखरे हुए नहीं हैं, समेकित हैं। ऐसी कविताएँ लिखकर कवि ने नए छंदों की रचना की है। तमाम कविताओं पर अलग–अलग लिखना समीक्षा को पुस्तक रूप देना होगा। वैसे हर कविता अपनी प्रस्तुति में सार्थक भावयुक्त हैं। यह मुक्तहृदय की भाषा में रचित अपने हंता की अकेली काव्य–पुस्तक है। नयी उपमाएँ गाँव गँवई की भाषा का कविता के अनुरूप प्रयोग कवि की भाषा– प्रवीणता को दर्शाते हैं। कबीर को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'भाषा का डिक्टेटर' कहा है। यह कथन भगवती बाबू पर भी बखूबी लागू होता है। वे जैसा चाहते हैं, भाषा को अलग–अलग मोड़ देने में सक्षम हैं।

सिद्धेश्वरजी के शब्दों में ''कविता भी कहती हुई पुरबइया और अलौकिक ब्रह्मांड का अहसास तो करा ही जाती है...ईश्वर के करीब होने की क्षमता यदि किसी विधा में है, तो वह कविता ही है।'' काव्य–रचना शब्द–साधना है, वाग्देवी की आराधना है, धाता के चरणों में समर्पित पुष्पराशि है। भगवती बाबू की कविताएँ पढ़कर मेरे मन में ऐसे ही भाव जगते हैं। इनकी कविताएँ प्रेरक हैं, कर्मशीलता का संदेश देती है, जैसे उनकी तिनका–तिनका शीर्षक कविता। 'तिनका–तिनका/जोड़ पखेरू अनगढ़ नीड़ बनाता चल' का भाव यही है। पखेरू आदमी के लिए प्रयुक्त है। आततायी को प्रकृति दंडित करती है।'पीर पराई/जिसने समझी/उसको गले लगाता चल', जैसी पंक्तियाँ 'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जो पीर पराई जाने रे' से मेल खाती है। कवि का संदेश यही है। साहित्य की हर विधा प्रकृति–प्रेम, मानव–प्रेम की सीख देती है। समीक्ष्य संग्रह की कविताएँ जीवन का संदेश देती हुई भावविभोर कराती हैं। कवि 'शब्दों के जादूगर' हैं।

संग्रह की पहली कविता 'जिन्दा है गाँव' में गाँव छोड़कर कलकत्ता जैसी जगह में रोजी–रोटी कमानेवाले का चित्र है। वह शहर में पहुँचकर मजदूरी करता है। महानगर में आकर पोतन की माफिक बन जाता है। कविकथन है–'जब महानगर में दोपाया पोतन चौपाया बन/खींच रहा होता है ठेला चरर–मरर।' ठेला खींचता हुआ व्यक्ति को महानगर की काली छाती पर,

'दल रहा मूँग' प्रतीत होता है। कुछ कमा–धमाकर वह गाँव की ओर मुँह करता है, वह अपने गाँव को नहीं भूला है। उसके लिए अभी भी 'जिन्दा है गाँव।'

काम के देवता का एक नाम 'मन्मथ'–मन को मथनेवाला भी है। संग्रह की कविताएँ पाठक–मन को मथ डालने में समर्थ हैं। नये उपमा–उपमान से लदी–फदी संग्रह की कविताएँ निराश की जगह आशा जगाती हैं, वैसे ये कविताएँ प्रतिकूल, विपरीत परिस्थितियों की ओर संकेत कराती हुई हमें सजग, सचेत और सावधान करती है। विडम्ब की स्थितियों के चित्रण से कविताएँ यथार्थपरक हो गयी हैं। जीवन–स्थितियों के चित्रण में रचनाकार सक्षम हो, उसकी रचना पाठक की अपनी जीवन–स्थिति का चित्रण समझती है और रचनाकार से उसका तादात्म्य स्थापित हो जाता है। इस दृष्टि से भगवती बाबू एक सफल श्रेष्ठ कवि हैं। उनकी प्रवृत्ति शरूर जाल बुनकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने की नहीं, अपितु बोलचाल के शब्दों में अपनी बात कहने की उन्हें महारत हासिल है। साथ ही, लघुपदों में विन्यस्त उनकी कविताएँ तो मिताक्षरा होने का प्रमाण देती हैं और 'अर्थ अमित अति आखर थोरे' का अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

पुस्तक : एक और दिन का इजाफा (कविता–नवगीत संग्रह) : भगवती प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक अभिधा प्रकाशन, रामदयालु नगर, मुजफ्फरपुर–842002, पृ. सं. 152, प्रथम संस्करण 2019, मूल्य 300 रु.(सजिल्द)

ग़ज़लें

विकास
गुलजार पोखर, मुंगेर
मो.–8709156853

कौन किससे जुदा हो गया
इश्क देखो ख़फा हो गया

डर यही है न पढ़ ले कोई
ख़त मेरा गुमशुदा हो गया

दर्द जाकर मिला दर्द से
ये नया माजरा हो गया

है शजर की जरूरत मुझे
धूप से सामना हो गया

चीख़ किसकी सुनाई पड़ी
क्या इधर कुछ बुरा हो गया

आईना आईन आईना
आईना रहनुमा हो गया

लोग ख़ामोश होने लगे
फिर वही फैसला हो गया।

2.
पल–पल में क़यामत है हम दोनों समझते हैं
मुश्किल ये मुहब्बत है हम दोनों समझते हैं

नादान नहीं हम हैं नादान नहीं तुम हो
क्या झूठ हक़ीकत है हम दोनों समझते हैं

मुस्कान है होठों पर आँखों में कोई हलचल
उसकी जो शरारत है हम दोनों समझते हैं

बदनाम करेंगे सब इल्ज़ाम लगायेंगे
हम दोनों की चाहत है हम दोनों समझते हैं

कुछ भी तो नहीं की है हर बार हुई ख़ारिज
उलझी सी सियासत है हम दोनों समझते हैं।

3.
नदी के सामने कोई खड़ा है
समुन्दर सिर झुकाकर देखता है

बदन पर धूप का साया न हो तो
सफ़र में फिर कहाँ आता मज़ा है

तुम्हें अब लौटकर आना पड़ेगा
किसी का ख़त जो तन्हा हो रहा है

अभी नाजुक बहुत है इश्क़ मेरा
ज़रा सी चोट से ही टूटता है

नज़र भी क़ैद है तन्हाइयों में
तुम्हारी शाम की कैसी अदा है।

4.
न समझो कुछ भी ऐसा कर रहा हूँ
कि अपने कद को छोटा कर रहा हूँ

उठेंगी उँगलियाँ मुझपर कहीं भी
अधूरा काम पूरा कर रहा हूँ

चलूँगा साथ उसके कब तलक यूँ
नया इक और रास्ता कर रहा हूँ

बहुत मुश्किल है थोड़ा वक्त लेगा
किसी पत्थर को शीश कर रहा हूँ

बचा लो इस नदी की शाख यारो
मैं खुद को आज प्यासा कर रहा हूँ

अभी हैं सिरफिरे हालात मेरे
अभी चुपचाप सोया कर रहा हूँ

तुम्हें जाऊँगा लेकर महफ़िलों मैं
तुम्हारा नाम साझा कर रहा हूँ।

आलेख

हिन्दी मराठी नाटकों में नारी चित्रण

डॉ. रमा दूधमांडे,
हिन्दी विभाग प्रमुख,
डॉ. सौ.इ.भा. पाठक महिला कला महाविद्यालय,
औरंगाबाद, महाराष्ट्र,
मो.–8975032435

नाटक निर्विवाद रूप से आधुनिक युग की एक लोकप्रिय विधा है, क्योंकि यह श्रव्य ही नहीं, बल्कि दृश्य भी है। यह विधा जीवन को उसके सम्पूर्ण रूप में प्रस्तुत करती है। जीवन का अर्थ है–परिवर्तन और यह परिवर्तन नाटक में उभरते हुए दिखाई देते हैं। नाटककार मानव जीवन के समन्वयवादी दृष्टिकोणों के सामंजस्य को केन्द्र में रखकर ही सामाजिक चेतना का समग्र दर्शन करा सकता है। नाटक में जिन घटनाओं और प्रसंगों, पात्रों और उसके चरित्रों को प्रस्तुत किया जाता है, उन्हीं के द्वारा समाज के रीति–रिवाजों, रहन–सहन, आचार–विचार और सभ्यता संस्कृति का पता चलता है। नाटककार का अपना एक विशेष दृष्टिकोण होता है, जिसके द्वारा वह घटनाओं और स्थितियों का अवलोकन कर अपने विषय को प्रस्तुत करता है।

नाटक चाहे कैसा भी हो, उसमें व्यक्ति, जाति और समाज विशेष के उत्थान–पतन का निरूपण होता है और काल विशेष के आचार–विचार, रीति–रिवाज, धर्म–कर्म आदि का भी ज्ञान होता है। इसी कारण सभी का अपना–अपना विषय होता है।

21वीं शती में नारी सजग, शक्तिसंपन्न, स्वतंत्र एवं आकर्षक व्यक्तित्व को लेकर जीवन के विविध क्षेत्रों में उभरकर आयी है। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में नारी की बुद्धिमता, कार्य कुशलता किसी भी दृष्टि से पुरुषों से कम नहीं है। कानूनी तौर पर नारी के प्रति सम्मान को बढ़ावा दिया जा रहा है। नाटक आत्माभिव्यंजन का महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता है। नाटक के साथ नारी का सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण रहा है।

हिन्दी–मराठी दोनों भाषाओं के साहित्य का विकास समानान्तर रूप से हो रहा है। दोनों में बहुत समानताएँ होकर भी प्रादेशिक विशिष्टताओं के कारण अपनी–अपनी विशिष्ट समस्याएँ और परिस्थिति अलग रही हैं। इसलिए दोनों भाषाओं में अपनी–अपनी मौलिकता भी है।

हिन्दी तथा मराठी भाषाओं का आपस में ऐतिहासिक, भौगोलिक सम्बन्ध है। दोनों भाषाएँ, लिपि, साहित्यिक स्रोत तथा आधारभित्ति पर एक दूसरे के निकट है। दोनों के साहित्य में विकसित प्रवृत्तियाँ भी मिलती–जुलती हैं। 'महाराष्ट्र मानस' के विशेषांक में भी मामा वरेरकरजी ने यह विचार प्रकट किये हैं। महाराष्ट्र में हिन्दी भाषा प्राचीनकाल से प्रचलित रही है। सन्त नामदेव, एकनाथ से लेकर महादजी शिंदे के समकालीन सोहिराबा आंबिये तक सभी सन्तों ने हिन्दी में भी काव्य रचना की है। कुछ संतों ने मराठी के साथ हिन्दी, गुजराती और कन्नड़–इन तीनों भाषाओं को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। मराठी की यह बहुभाषी परंपरा अन्य भारतीय भाषाओं में शायद ही दिखाई देगी।

हिन्दी और मराठी भाषाएँ भारत की समृद्ध भाषाओं में से हैं। दोनों भाषाओं के निकटवर्ती क्षेत्र के कारण सांस्कृतिक, साहित्यिक आदान–प्रदान का कार्य निरन्तर चलता आ रहा है। दोनों भाषाओं की साहित्यिक पृष्ठभूमि में बहुत कुछ समानताएँ भी हैं। इसका अध्ययन करना है। इन समानताओं के बावजूद भी प्रादेशिक विशिष्टताओं के कारण अपनी–अपनी विशिष्ट समस्याएँ और परिस्थिति अलग रही है। इसलिए दोनों भाषाओं में अपनी–अपनी मौलिकता भी है।

गाँधीजी ने जब आंदोलन द्वारा अपनी सार्वभौम राष्ट्रीयता को विस्तृत किया और इस राष्ट्रवाद की भावना केवल नगरों तक सीमित न रहकर जनसाधारण में तीव्रता से फैल गयी। इससे नारी जागरण का स्वर मुखरित होने लगा। नारी को अपने कर्तृत्व की चुनौती देनेवाला विशाल क्षेत्र दिखायी देने लगा। इन आंदोलनों
का प्रभाव युगीन साहित्य पर भी दिखाई देने लगा। मराठी नाट्य साहित्य में 1920 ई. का कालखण्ड महत्त्वपूर्ण है। नाटकों का विषय सामाजिक उत्कर्ष के दर्शकों की भावनाएँ प्रस्फुटित करने का महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता था। साहित्य में जाग्रत महिला का चित्रण होने लगा। 1920 से सन् 1947 ई. तक का कालखंड स्त्री जीवन के बारे में संक्रमण का कालखंड है। परंपरा और नये जीवन में संघर्ष निर्माण हुआ था। इस कालखंड में मराठी नाटककारों ने जाग्रत स्त्री का चित्रण किया है।

हिन्दी साहित्य में द्विवेदी जी के पश्चात् स्वच्छन्दतावादी की एक अजस्र धारा उमड़ पड़ी और उसका प्रभाव हिन्दी के नाट्य साहित्य पर भी पड़ा। प्रसाद जी में भी नारी–स्वातंत्र्य विषयक संवेदना जाग्रत थी। प्रसाद जी लिखित नाटकों में नारी स्वातंत्र्य का अनुकूल चरित्र–चित्रण किया था।

साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति नाटकों में भी नारी जीवन का चित्रण विविध प्रकार से उपलब्ध है। आज इस बात की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि अलग–अलग भाषाओं कि साहित्यिक एकता के सूत्रों की खोज की जाए। इस दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन में प्राप्त समानताओं का मूल्य और भी बढ़ जाता है। इससे सांस्कृतिक और भावात्मक एकता का स्पष्टीकरण हो जाता है। प्रस्तुत पेपर में भावात्मक एकता की खोज ही मेरा लक्ष्य रहेगा।

हिन्दी नाट्य साहित्य में भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने नारी–दुर्दशा का भी चित्रण किया है। 'अबला विलाप', 'बालविवाह', 'दुःखिनी बाला' देवकीनन्दन त्रिपाठी द्वारा रचित 'बाल विवाह', 'विधवा विवाह', 'विवाह विडम्बन' वृद्धावस्था विवाह आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

राधेश्याम कथावाचक ने बहुविवाह प्रथा का संकेत अपने नाटकों में किया है। पुरुष की विलासिता से स्त्री दुःख भोगती है। इसका चित्रण 'शिक्षादान नाटक' में बालकृष्ण भट्ट ने किया है।

प्रताप नारायण मिश्र के 'केलि कौतुक' रूपक में दुश्चरित्र नारी पर तीखा व्यंग्य है। इस कालखंड के नाटकों में सामाजिक शोषण की पृष्ठभूमि में नारी की वेदना एवं पीड़ा को चित्रित किया गया है। पर उसे कहीं भी प्रगतिशील नहीं दिखाया गया है। रघुवीर सिंह ने मनोरंजनीय नाटक लिखा, जो भारतीय महिलाओं के शिक्षार्थ है।

इस तरह इस कालखंड में नाट्य साहित्य में सुधारवादी आंदोलनों के फलस्वरूप नारी पर होनेवाले अत्याचारों का वर्णन है। नाटकों में नारी का तो विद्रोही स्वर क्षीणप्राय पाया जाता है।

मराठी नाटकों का इतिहास प्राचीन, वैभवशाली एवं प्रभावशाली है। 1880 से 1900 के कालखण्ड में किर्लोस्कर तथा देवलजी ने मराठी रंगमंचीय नाटकों की नींव डाली। इस कालखंड में स्त्री शिक्षा, पुनर्विवाह, प्रौढ़

विवाह–इन आंदोलनों का आरंभ हुआ था। स्त्री–शिक्षा के बारे में अनुकूल–प्रतिकूल मत–मतांतरी की हवा चल रही थी। उसी समय मोरेश्वर पोतदार लिखित नाटक 'सुशिक्षिता स्त्री' 1886 तथा ना. वा. कानिटकर लिखित 'तरुणी शिक्षण' नाटक प्रसिद्ध हुए। पहले नाटक में स्त्री–शिक्षा का समर्थन तथा दूसरे में स्त्री–शिक्षा का विरोध तीव्रता से दर्शाया गया था।

'सौभाग्य रमा' नाटक में वैधव्य, दु:ख तथा अंत में नायिका का पुनर्विवाह दिखाकर एक नया विचार प्रस्तुत किया गया। दहेज प्रथा ने इस कालखंड में विकराल रूप धारण किया था। दहेज प्रथा संबंधी नारायण हरि भागवत का नाटक 'हुंडा प्रहसन' विख्यात है और 'शारदा' नाटक उस कालखंड के बालविवाह, अनमेल विवाह समस्या पर कड़ा प्रहार करता है। यह नाटक अत्यंत प्रभावशाली एवं गतिमान है।

स्त्री–शिक्षा प्रचार के लिए लिखे हुए नाटकों में बालकृष्ण दिनकर वैद्य लिखित 'शुर स्त्री प्रभाव', कोल्हटकर लिखित 'गुप्तमंजुष', वामन मंगेश लिखित 'प्रेम निराशा' आदि नाटक है।

मराठी के कई नाटक तो केवल नायिका प्रधान है। जैसे केलकर लिखित 'चन्द्रसेना भुवन सुन्दरी', घामलकर लिखित 'नंदकुमार', टिपणीस लिखित 'कमला' आदि।

मराठी नाट्य विश्व में श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर नये युग के निर्माता हैं। 'विरतनय' नाटक में विधुर विवाह को पुरस्कृत किया गया है। 'गुप्त मंजुष' नाटक में स्त्री–शिक्षा की चर्चा की गयी है। 'मतिविकार' नाटक में पुनर्विवाह का समर्थन है। 'प्रेमशोधन' नाटक में अनमेल विवाह के दुष्परिणाम दिखाये हैं। 'जन्म रहस्य' नाटक में मिश्र विवाह का समर्थन है। कल्हटकरजी के नाटकों ने रंगमंच पर क्रांति निर्माण की।

राम गणेश गडकरी ने 'प्रेम संन्यास' नाटक में सामाजिक रचना के कारण निर्मित हुई स्त्री–पुरुषों की जटिल समस्याओं का चित्रण किया है। विषम–विवाह, बाल–विवाह, प्रेम–विवाह, राक्षस–विवाह आदि विवाहों के विविध प्रकार नाटक में वर्णित है, तो 'एकच प्याला' नाटक में सिंधु और गीता के परस्पर विरोधी स्वभाव के चित्रण प्रस्तुत किये गये हैं। संपन्न परिवार की पत्नी सिंधु सुशिक्षिता है। उत्कृष्ट प्रेम करनेवाली पति के दुर्गुणों को दूसरी ओर मोड़ने का प्रयास करनेवाली सिंधु भारतीय नारी का उज्ज्वल रूप है। उसकी सत्यनिष्ठा स्वावलंबन से तो नाटक की उदारता अधिक बढ़ जाती है। उसका आत्मसमर्पण उसे पतिव्रताओं
की श्रेणी में पहुँचाता है।

सिन्धु, गीता, शरद आदि नारी पात्रों के द्वारा गडकरीजी ने समाज में व्याप्त बाल–विवाह, विधवा–विवाह, प्रेम–विवाह, स्त्री–शिक्षा आदि समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। गडकरी लिखित 'भाव बंधन' नाटक को भी अभूतपूर्व यश प्राप्त हुआ। लतिका, मालती, इंदू, बिन्दु आदि पात्रों के द्वारा स्त्री–जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है। इस नाटक में पाश्चात्य शिक्षा–पद्धति से या पुस्तकी शिक्षा से युवा स्त्री–पुरुषों में एक गैर जिम्मेदार विद्यालयी वृत्ति निर्माण हुई थी, उसी का चित्रण है।

संक्षिप्त कहें, इस कालखंड पर प्रभाव डालनेवाले गडकरी जी के नाटकों में प्राय: नायिकाओं का प्राधान्य रहा है। नायिकाओं की सत्त्वशक्ति वृत्ति से प्रतिनायक की पराजय दिखायी गयी है।

'प्रेम संन्यास' में लीला को अंत में मरणासन्न दिखाया गया है, किन्तु जयन्त का मन वह अंत में जीत लेती है। पुण्य प्रभाव नाटक में पाषाण हृदयी वृंदावन में मन परिवर्तित होकर वह वसुंधरा के चरण–स्पर्श करता है तथा उसे 'माता' कहता है। सिंधु की मृत्यु के पश्चात् सुधाकर को उसकी महनीयता समझ में आती है, यहाँ भी सिंधु की विजय समझ में आती है। सन् 1920 ईस्वी तक का कालखण्ड मराठी नाट्य सृष्टि का प्रभावी कालखंड था।

1920 से 1947 ये कालखंड रंगमंच पर नये युग का सूत्रपात करनेवाला उथल–पुथल का रहा। रंगमंच पर नारी–जीवन की विभिन्न विभिषिकाओं के विविध रूप हैं, विभिन्न समस्याएँ हैं। पुरुष के अहंकार से नारी हर क्षेत्र में संघर्षरत रही है। नारी के उद्धार में कानून के साथ–साथ साहित्य का भी योगदान है। इस कालखंड में नाटकों पर मनोविश्लेषण मनोविज्ञान का विशेष प्रभाव रहा। इस कारण नारी–जीवन के विविध पहलुओं मनोज्ञ दर्शन इस कालखण्ड के नाटकों में पाए जाते हैं। स्त्री चरित्रों से सामाजिक जीवन कहाँ तक प्रभावित हुआ है!

जयशंकर प्रसाद जी अपने युग के नारी स्वातंत्र्य के सबसे बड़े समर्थक थे। उनके नाटकों में अभिव्यक्त नारी–विद्रोह सामाजिक न होकर काव्यात्मक तथा मनोवैज्ञानिक है। प्रसाद जी के अधिकांश नाटकों में नारी ही पुरुष की प्रेरणादायिनी शक्ति है। प्रसाद जी ने नारी को आदर, सम्मान तथा श्रद्धा के रूप में देखा है और अपने नाटकों में नारी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।

लक्ष्मीनारायण मिश्रा जी ने अपने नाटकों में यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। मिश्रजी के नारी पात्रों ने प्राचीन संस्कृति का पर्दा हटा दिया है। उनके नारी पात्र वास्तिवकता के धरातल पर जीते है। 'संन्यासी' नाटक में आधुनिक विचारधारा को देखा जा सकता है। उच्च शिक्षा से निर्मित जटिल समस्याओं से ग्रस्त नारी–जीवन का यथार्थ चित्रण 'संन्यासी' में दिखाई देता है। 'राक्षस का मंदिर' में नारी–जीवन संयम से न बँधा हो तो पुरुष उसे पतन की ओर खींचते ले जाता है, तो आधुनिक युवती के रूप में मिश्राजी ने 'मुक्ति का रहस्य' में आशादेवी का चित्रण किया है। इनके नाटकों में पाश्चात्य अंधानुकरण से उत्पन्न परिस्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत नाट्यकृति में आशादेवी के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। यथार्थवादी धरातल पर लिखे गये मिश्रजी के नाटकों में बौद्धिक स्तर पर विचारों की तीव्रता अधिक मात्रा में है।

उपेन्द्रनाथ अश्क के अधिकतर नाटक मध्यमवर्गीय जीवन की सामाजिक और पारिवारिक विविध समस्याओं पर आधारित है। नारी के प्रति अश्क के मन में असीम श्रद्धा और अगाध वेदना है। इन्होंने विवाह और प्रेम की समस्या पर आधारित विविध संस्कारोंवाली नारियों के चित्र खींचे हैं। आधुनिक सुशिक्षिता, नारी के गुण–दोनों की चर्चा भी 'स्वर्ग की झलक' में दिखाई देती है। 'अलग–थलग रास्ते' की राजी इसी का प्रतीक है। अपमान को न सहते हुए अपनी योग्यता के बल पर मान पाना चाहती है। 'कैद' भी अपनी पुरानी रूढ़ियों से ग्रस्त है। पुरानी परंपरा का और आधुनिकता का अपूर्व सांमजस्य अश्क जी के नाटकों में अभिव्यक्त हुआ है।

मराठी नाटकों में सुधारवादी दृष्टिकोण को देखते हैं। हिन्दी और मराठी साहित्य नारी विषयक परंपरावादी और क्रांतिकारी दोनों दृष्टियों से अत्यधिक प्रभावित हुआ है। मराठी नाटककारों ने प्राय: नारी को नारी विषयक समस्याओं को प्राधान्य देकर नाटक लिखे हैं।

साहित्य में भी समाज दायित्व की भावना तीव्रतर हो गयी थी। देशभक्ति के साथ नारी जागरण का स्वर ऊँचा उठा है। मराठी के प्रमुख नाट्यकार–बिट्ठल वरेरकर, वीर वामनराव जोशी, केशव अत्रे, मा. ग. रांगणेकर, स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर, वासुदेव भोले इ. मराठी नाटकों की विशेषता में स्त्री नाटककारों का योगदान है। इन्होंने प्राय: नारी जीवन को प्राधान्य देकर नाट्य रचना की है। वरेरकरजी लिखित 'हाच मुलाचा बाप' इस नाटक में बालविवाह के दुष्परिणामों को दिखाया है। मंजिरी
विद्रोही नारियों की प्रतिनिधि बनकर नाटक में उपस्थित है। वह सिद्ध करती है

कि बुद्धिमता में नारी पुरुषों से कम नहीं है। महाराष्ट्रीय मध्यम वर्ग के नारी–जीवन का यथार्थ चित्रण इस नाटक में है। 'पापी पुरुष' नाटक में यह समस्या प्रस्तुत की गयी है कि दयनीय परिस्थिति में कुमार्ग अपनानेवाली महिलाओं को भी समाज में समानता से रहने का अधिकार है।

वीर वामनजी के नाटकों में अभिव्यक्त नारी–जीवन की विशेषता यह रही है कि वैयक्तिक समस्याओं को देशभक्ति के प्रखर प्रकाश में गौणत्व प्राप्त हुआ है और नायिकाएँ पुरुष पात्रों के समान है। नारी–जीवन का एक तेजस्वी रूप चित्रित किया है।

अत्रेजी के नाटकों में अभिव्यक्त नारी–जीवन भारतीय संस्कृति से परिपूर्ण है। जागृत नारी का दर्शन अंग्रेजी के नाटकों द्वारा प्राप्त होता है, किन्तु आधुनिकता के स्पर्श से ये जागृत नारी भी भारतीय संस्कृति को भूला नहीं पाती। स्त्री–मुक्ति का भी वे समर्थन करते हैं। आत्म–सम्मान की भावना, देश के प्रति अपने कर्तव्य की भावना से परिपूर्ण नारी का चित्रण अत्रेजी ने किया है।

वि. दा. सावरकरजी की राष्ट्रनिष्ठा देशोन्नति के लिए, नारी स्वातंत्र्य के लिए छटपटाने वाले वे सुधारक भी थे। देश के कोने–कोने में नारी का तेजस्वी रूप जागे, वह स्वयं पूर्ण हो, अपनी रक्षा स्वयं करे–यही संदेश सावरकर जी के नाटकों से प्राप्त होता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि हिन्दी और मराठी भाषी प्रदेश में निकटता के कारण साहित्यिक, सांस्कृतिक आदान– प्रदान तो सहजता से हो सकता है। सांस्कृतिक एकता समान समस्याओं को देखा जा सकता है। हिन्दी–मराठी नाटकों में मध्यमवर्गीय समाज विशेष रूप से प्रभावित किया। आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से और समाज–सुधारकों के अथक प्रयास से नारियों में जागृति निर्माण हुई। हिन्दी भाषी क्षेत्र में प्रसाद से लेकर आज के अनेक नाटककारों तक नारी–जीवन का चित्रण विविध रूपों में हुआ। मराठी भाषी क्षेत्र में यही नारी–जीवन आज के नाटककारों तक उसी तरह अभिव्यक्त है। नारी–जीवन की यह अभिव्यक्ति दोनों भाषाओं में प्रभावी हुई है। हिन्दी भाषी नाटककारों ने प्रौढ़ कुमारियों की समस्या का चित्रण नहीं किया। मराठी नाटककारों ने नारी की विवशता, मानसिक उत्पीड़न को शब्दांकित किया है। नारी–शिक्षा के प्रति हिन्दी नाटकों में अनुकूलता नहीं दिखाई गयी है। मराठी नाटकों में भी व्यंग्यात्मक आलोचना की गयी है।

हिन्दी–मराठी नाटकों में कुमारी माता की मनोदशा का चित्रण किया है और विवाह का उपाय सुझाया है। इसके साथ दहेज प्रथा का चित्रण भी है। बाल–विधवा का चित्रण हिन्दी के नाटक में कम हुआ, मराठी नाटकों में तो नहीं ही है। अनमेल विवाह का वर्णन दोनों भाषाओं में है, विधवाओं की दयनीय अवस्था का चित्रण है, वैश्याओं के प्रति सहानुभूति है। विद्रोही नारी का चित्रण केवल अश्कजी ने किया है। मराठी में अनेक नाटकों में नारी का यह विद्रोह रूप चित्रित हुआ है।

नारी के सुकोमल रूप के साथ–साथ उसका महत्त्वाकांक्षी कुटिल रूप हिन्दी मराठी नाटकों में यथार्थ रूप में वर्णित है एवं देशभक्ति नारी का चित्रण भी हुआ है। नाटक का संबंध समाज से अधिक निकट होता है। लोकरंजन और लोकशिक्षा की क्षमता नाटक में अत्यधिक है।

आधार ग्रंथ–

1. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन– डॉ. गणेशन
2. हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन –डॉ. चन्द्रकांत बांदिवडेकर।
3. नाटककार उदयशंकर भट्ट– डॉ. मनोरमा शर्मा ।
4. आधुनिक हिन्दी नाटक – डॉ. नगेन्द्र।
5. हिन्दी मराठी नाटकों में नारी–डॉ. वसुंधरा जोशी
6. साठोत्तर हिन्दी नाटक– डॉ. नीलम राठी।

कविता

क्षितिज की ओर

किशोर अग्रवाल
9425212340

मैंने बस यूँ ही ठिठककर
पलटकर पीछे देखा तो अब तक तय किया

जीवन फैला पड़ा दिखा
सारा का सारा एक विस्तार में

क्षितिज की ओर मेरा बचपन पड़ा था
माँ थी, बाबूजी थे, मेरे खिलौने थे
स्लेट के साथ वर्णमाला व कायदा था
छुपा–छुपाई के साथी, इमली और मिठाइयाँ थीं

बाद उसके गलबहियाँ डाले दोस्त थे
आम के पेड़, खेत, बीजगणित की भूलभुलैया
'अ' बराबर बारह और 'ब' बराबर बीस
तो बताओ 'स' बराबर कितने? बाप रे, बाप!

भीगती नसें, नई उत्सुकताएँ, प्रश्न थे
उलझे–उलझे से उत्तर फिर प्रश्न दर प्रश्न
कुछ झाँकती–सी खिड़कियाँ और बारजे
कुछ अबतक याद रहे स्पर्श अनचीन्हे

पढ़ाई, परीक्षा, आवारगी, बेचैनी थी
छोटी–छोटी चोरियाँ, ताकाझाँकी
भविष्य की कल्पनाएँ सोच उधेड़बुन
पकते बालों वाली माँ और गंभीर होते पिता

सहपाठिनी के साथ विचरती फिर तुम थी
हँसती, खिलखिलाती, सकुचाती, अल्हड़–सी
कोई तिनका हमेशा होता था दाँतों में तेरे
कॉलेज फंक्शन में मंच परे मेरा सामान सहेजे

तुम थी मेरी सारी उत्सुकताओं का समाधान
मेरी बेसिर–पैर कविताओं के श्रोता व प्रशंसक
सारी झिड़कियों उपेक्षाओं से निजात दिलाती
छोटे कामों का निरीक्षण करती मान देती तुम

मैं देखता रहा उस फैले विस्तार में लगातार
जहाँ बस तुम थी, तुम थी, तुम थी सब तरफ
फिर धुँधलाने लगा सारा कुछ इस ओर का
तुम्हारा जाना, रेलवे का स्टेशन, डिब्बा, तुम

बस फिर इधर कुछ साफ और सकारण नहीं,
बस यूँ ही आपाधापी–सी बिखरी जिंदगी
नौकरी शादी रिश्तेदार बच्चे समारोह संस्कार
एक धुंध–सी फैली हुई सब पर तू क्षितिज तक।

आलेख

हिन्दी कहानी का नया परिदृश्य

डॉ. अवधेश कुमार चन्सौलिया
प्रा. हिन्दी, डी.एम. 242 दीनदयालनगर
ग्वालियर (म.प्र.)
मो. 9425187203

नई कहानी का आरंभ स्वाधीनता के पश्चात् से ही आरंभ हो गया था। क्योंकि मोहभंग की प्रक्रिया स्वतंत्रता के पश्चात् सन् 1960 के आसपास प्रारंभ हो गयी थी। सन् 1962 के चीनी आक्रमण ने भारतीय जनमानस में काफी बदलाव ला दिया था। आजादी के बाद बढ़ती बेरोजगारी, राजनैतिक भ्रष्टाचार, महँगाई, नौकरशाही, तीसरे महायुद्ध की आशंका, अनैतिकता आदि ने जनमानस को उद्वेलित करना प्रारंभ कर दिया। यहीं से कहानी के कथ्य एवं शिल्प में बदलाव प्रारंभ हो गया और ऐसी कहानी नई कहानी या समकालीन कहानी कही जाने लगी। यह कहानी आत्म–सीमित और व्यक्तिवादी न होकर सामाजिक सरोकारों से लैस हो गयी।''अब तो वह अपने माध्यम से समय, समाज, परिस्थिति और पूरे परिवेश को मूर्त करने, उसके आमने–सामने आने और उसमें शामिल होकर उसकी चुनौतियों को स्वीकार करने और उनसे टकराने का हथियार हो गयी है।''1

समकालीन कहानीकार अपने समय के प्रति बेहद सजग और सतर्क है। वह सामाजिक स्थितियों, परिस्थितियों का चश्मदीद गवाह ही नहीं, अपितु भोक्ता भी है। तेजी से बदलते समाज, मान्यताओं और विश्वासों को वह पूरी शिद्दत के साथ जी रहा है। वह सामाजिक विसंगतियों से जूझ रहा है, टक्कर ले रहा है और प्राप्त अनुभवों को कहानी में व्यक्त कर रहा है। अनुभव की यही प्रामाणिकता समकालीन कहानी की ताकत है।

आज के तेजी से बदलते सामाजिक परिदृश्य में भोगवादी संस्कृति की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसी भोगवादी प्रवृत्ति के कारण समाज कें भ्रष्टाचार, बेकारी, स्वार्थपरता, मूल्यहीनता, आतंकवाद और स्वच्छंदवाद यौनाचार को बढ़ावा मिला है। स्त्री–विमर्श को इतना अधिक स्वच्छंद कर दिया कि उसने सारी सामाजिक मर्यादाओं को तोड़कर उन्हें ताक पर रख दिया। अब वह शुचिता, पवित्रता, लज्जा, सहनशीलता जैसे शब्दों की खिल्ली उड़ाती है। समकालीन कहानियों में स्त्री के संबंध में इतना खुलकर पुरुष लेखक नहीं लिखते, जितनी महिलाएँ लेखिकाएँ लिख रही हैं। वे सेक्स की स्वतंत्रता को ही स्त्री स्वतंत्रता समझ बैठी हैं।''सेक्स और नैतिकता आज बदलते परिवेश में अपनी पुरानी धारणाओं से मुक्त है; क्योंकि आधुनिक युग की दृष्टि विज्ञानवादी, गति विकासवादी, राज भौतिकवादी और गन्तव्य भोगवादी है।''2

समकालीन कहानी के प्रारंभ से ही ऐसी कहानियाँ प्रकाशित होने लगी थीं। कुलभूषण की कहानी 'निश्चय' में अविवाहित नायिका यह निश्चय करती है कि वह अपने गर्भ को नष्ट करा देगी, लेकिन उस प्रेमी से विवाह नहीं करेगी। कृष्ण बलदेव वैद की कहानी 'त्रिकोण' में पति–पत्नी को दूसरे के साथ बिस्तर पर देखते हुए तटस्थ रहता है। स्त्री का नंगेपन को सचित्र विस्तार से वर्णन करनेवाली कहानी है–नवरंग जायसवाल की 'तुम अपना बयान जारी रखो'। 'हंस' जनवरी, 1995 में प्रकाशित इस कहानी की नायिका द्रौपदी को छात्र–छात्राओं और प्राध्यापकों के मध्य नग्न प्रदर्शन करने के अपराध में पुलिस गिरफ्तार करती है। वह अदालत में विस्तार से दंगाइयों द्वारा किये गये अत्याचारों को गुप्तांगों के नाम ले–लेकर बताती है। इस वीभत्सता को इतना विस्तार देने की क्या आवश्यकता थी? कहानीकार एक पंक्ति में बलात्कार का जिक्र कर उसकी मानसिक स्थति को, उसके परिणाम को विस्तार दे सकता था।

समकालीन कहानीकारों में कुछ ऐसे भी हैं, जो श्रेष्ठ सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक कहानियाँ लिख रहे हैं। वे जन समस्याओं का यथार्थ चित्रण कर लोगों को चिंतन के लिए विवश करती हैं। गिरिराज किशोर की कहानी 'गुलाबजामुन खाइए' एक सामान्य मजदूर की बेवसी की कहानी है। मजदूर के पास सात रुपये हैं, फोटो दस रुपये की खिंचती है। लड़की गुलाबजामुन खाना चाहती है, लेकिन पर्याप्त रुपयों के अभाव में वह गुलाबजामुन नहीं खा पाती। धीरेन्द्र अस्थाना की 'भूत', 'मुहिम', 'युद्ध', 'छलावा'; शरणबंधु की 'कुत्ते' और भीष्म साहनी की कहानी 'पटरियाँ' आर्थिक विषमता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। गोविन्द मिश्र की 'सुनंदों की खोली', चित्रा मुदगल की 'चेहरे', 'भूख'; राकेश वत्स की 'ताजा रोटी की महक', 'छुट्टी का एक दिन'; सिम्मी हर्षिता की 'भूख की बिक्री' में भी गरीबी की विवशताओं को पूर्ण संवेदना के साथ रेखांकित किया गया है। शिक्षित बेरोजगारी से संबंधित कहानियों में भीमसेन त्यागी की 'जमी हुई रात'; मंजुल भगत की 'नालायक बहू'; सिम्मी हर्षिता की 'चक्रव्यूह', रामदरश मिश्र की 'एक रात', दीप्ति खंडेलवाल की 'विषपायी' जैसी अनेक कहानियाँ हैं, जिनमें बेकारी के कारण संबंधों का रूप अमानवीय हो जाता है।

ग्रामीण समाज की परिवर्तित दशाओं को शिव प्रसाद सिंह, कमलेश्वर मार्कण्डेय, रामदरश मिश्र, काशीनाथ सिंह, भीमसेन त्यागी, विवेकी राय, असगर बजाहत, मिथिलेश्वर आदि कथाकारों ने अपनी कहानियों में सूक्ष्म और गहन संवेगों के साथ रूपायित किया है। इन कहानियों में ग्रामीण और महानगरीय जीवन–शैली का द्वन्द्व उभरकर सामने आता है। गाँव के बुजुर्ग महानगरीय जीवन को देखकर दाँतों तले उँगली दबाकर वापस गाँव चले जाते हैं।

समकालीन कहानी पाश्चात्य भोगवादी दर्शन से विकसित हुई है। इस दृष्टि ने भारतीय मनीषियों की पुरातन अवधारणा को पूरी तरह बदल डाला है। सन् 1990 के बाद से चली उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण की बयार ने कहानियों की भावभूमि को बहुत अधिक मात्रा में प्रभावित किया है। 'लिव इन रिलेशनशिप' का नया कनसेप्ट अब भातरीय समाज को तेजी से प्रभावित कर रहा है। अब समलैंगिक संबंधों को भी दबे स्वर में ही सही, स्वीकृति मिलने लगी है। उत्तर आधुनिकता में जीने की आजकल मुहिम–सी चल रही है। कुछ लोग पुराने जीवन मूल्यों की वकालत कर रहे हैं और कुछ उत्तर आधुनिक जीवन जीना चाहते हैं। कुछ कहानीकारा वादों से घिरे हैं। कुछ स्त्री–विमर्श की मुहिम में शामिल हैं, तो कुछ दलित–विमर्श में। राष्ट्र की चिंता करनेवाले कहानीकार बहुत कम हैं। सांस्कृतिक क्षरण की चिंता भी भोगवादी प्रवृत्ति में विलीन हो गयी। कहानीकार दलों में बँटे हुए हैं। इस संबंध में सुधीश पचौरी का कथन द्रष्टव्य है–''समकालीन कथा दृश्य में जितनी कहानी है, उससे ज्यादा है उसकी पैरवी और मुकदमेबाजी। कहानी के बाद उसकी अगली कहानी यानी 'पैरवी' कहीं ज्यादा साधी जाती है। यही तो बाजार का सुप्रबंधन है। कहानी को प्रबंधित किया जा रहा है।''3

उदारीकरण और निजीकरण के कारण साहित्य पर भी बाजारवाद हावी हो गया है। इसलिए कहानियाँ भी झूठे विज्ञापनों की तरह लुभावनी मुद्रा में प्रस्तुत की जा रही हैं। 21 वीं सदी की कहानियों में नयी छवि उभर रही है। ये

कहानियाँ नये जीवन मूल्य गढ़ रही हैं। इन कहानियों में साहस, हठधर्मिता और प्रयोगधर्मिता का आग्रह है। 21 वीं सदी के समकालीन कहानीकारों में मनीषा कुलश्रेष्ठ, अल्पना मिश्र, रवि बुले, प्रभातरंजन, तरुण भटनागर, राकेश मिश्र, पंखुरी सिन्हा, सोनाली सिंह, अभिषेक शुक्ल, मनोज पांडेय, दीपक श्रीवास्तव आदि कहानीकार प्रमुख हैं। मनीष कुलश्रेष्ठ के कहानी–संग्रह 'कठपुतलियाँ' में 'रसरूप', 'गंध', 'भगोड़ा', 'अवक्षेप' और स्वाँग जैसी कहानियाँ बिल्कुल अलग तरह की भावभूमि को रेखांकित करती है। शर्मिला बोहरा जालान का कहानी संग्रह 'बूढ़ा चाँद' की कहानियों में विशिष्ट जीवनानुभव और शिल्प समाहित है। पंखुरी सिन्हा की कहानियाँ उनके यायावरी जीवन पर आधारित हैं। प्रत्यक्षा की कहानियाँ आधुनिकता और परम्परा के द्वंद्व को दर्शाती हैं। ये कहानियाँ बताती हैं कि सांस्कृतिक संक्रमण के इस काल में हमें कौन–से मूल्यों को विरासत के रूप में हमें अपनाना है। इसी तरह की एक कहानी स्वाती तिवारी की 'स्त्रीमुक्ति' है। यह हंस जनवरी, 2011 में प्रकाशित कहानी है। पंकज मिश्र की कहानियों में वैश्वीकरण से संग्रसित जीवन की विसंगतियों का यथार्थ चित्रण है। ये कहानियाँ बताती हैं कि बाजारीकारण ने किस तरह हमारे जीवनमूल्यों को अपनी गिरफ्त में ले लिया है।

संजय कुंदन और रवि बुले अपनी कहानियों में मानवीय मूल्यों और सामाजिक अंतर्विरोधों को उद्घाटित करते हैं। इन कहानीकारों की कहानियों को पढ़कर ऐसा लगता है कि ये समय के सापेक्ष होकर लिख रहे हैं। इनमें उत्तर आधुनिकता से उत्पन्न खतरों की भी चिंता व्यक्त की गयी है।

विदेशी उत्तर आधुनिक कहानियाँ बहिष्कृत लोगों पर लिखी गयीं। इनके लेखन के केन्द्र में हत्यारे, वेश्याएँ, शराबी, अपराधी, समलैंगिक आदि प्रकार के लोग हैं। भारत में महिलाएँ और दलित बहिष्कृत हैं। अतः इन लोगों पर विमर्श सहित कहानियाँ लिखीं जा रही हैं। इन कहानियों में परंपरा और उत्तर आधुनिकता का संघर्ष भी है। शहरों की बनावटी–संस्कृति और आतंकवाद पर ये कहानियाँ चिंता प्रकट करती हैं। मनुष्य के जीवनमूल्य बदल रहे हैं, तो ये कहानियाँ भी बदल रही हैं, लेकिन कुछ कहानीकार अपनी कहानियों के माध्यम से अनास्था और हताशा को बढ़ावा दे रहे हैं। उत्तर आधुनिकता के कारण नकारात्मकता को परोसा जा रहा है। इसलिए समाज तेजी से विघटन की ओर बढ़ रहा है और राष्ट्रीयता की भावना विलोपित होती जा रही है। अतः अब ऐसी कहानियों की आवश्यकता है, जो समाज से भ्रष्टाचार, आतंकवाद, विघटन और नकारात्मक भाव को समाप्त कर सांस्कृतिक उन्नयन और राष्ट्रवाद को बढ़ावा दें।

संदर्भ–

1. धनंजय वर्मा, समसामयिक हिन्दी कहानियाँ, नेशनल बुकट्रस्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 1988, पृ.
2. अमर सिंह वधान, समकालीन हिन्दी कहानी, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1987, पृ. 142
3. सधीश पचौरी, उत्तर यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 195

कविता

सपने मरते नहीं, जिंदा रहते हैं

श्रीमती लीला श्रीवास्तव
ग्राम–कैतहा, पोस्ट–भवानीपुर
जिला–बस्ती (उ.प्र.)
मो.–7355309428

मनुष्य के सपने मरते नहीं हैं, जिंदा रहते हैं
सपने कभी पूरे होते हैं, कभी पूरे नहीं होते हैं
मनुष्य का भौतिक शरीर
एक समय के बाद मृत हो जाता है
वो अपने अधूरे सपने
आनेवाली पीढ़ियों को सौंपकर जाता है
पीढ़ी–दर–पीढ़ी वो सपने पलते रहते हैं, जिंदा रहते हैं
अगली पीढ़ी में फिर कुछ सपने पूरे होते हैं
और नई पीढ़ी द्वारा नए सपने देखे जाने लगते हैं
सच है, सपने जो देखे जाते हैं,
मरते नहीं हैं, जिन्दा रहते हैं...

इसी तरह पेड़–पौधे भी प्रकृति में
हरियाली फैलाने के सपने देखते हैं
कभी उसके सपने साकार होते हैं
कभी जंगल के जंगल कट जाते हैं
उसके सपने फिर भी जिंदा रहते हैं
बीज से अंकुरित होकर पेड़–पौधे बनते हैं
सर्वत्र प्रकृति में हरियाली बिखेरते हैं
सच है, सपने कभी मरते नहीं, जिंदा रहते हैं...

एक व्यापारी सपने देखता है कि
अपनी छोटी दुकान से
एक बड़ा प्रतिष्ठान बनाएगा
फिर फैक्टरी लगाएगा
अपने ब्रांड को अंतर्राष्ट्रीय बनाएगा
हजारों में से कुछ के सपने सफल हो जाते हैं
जिनके अधूरे रहते हैं वो
अपनी पीढ़ी को सौंप जाते हैं
सच है, सपने कभी मरते नहीं, जिंदा रहते हैं...

एक कवि भी सपने देखता है
सद्भाव, समरसता और हो समतामूलक समाज का
अपने शब्दों के जरिए उठाता है
शोषण, अत्याचार और भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज
कवि चाहता है उसके शब्दों से
समाज को मिले नई दिशा और दशा
कभी अपने शब्दों से सुभाषचंद्र और भगत सिंह
बनकर देता है क्रान्ति को धार
कभी महात्मा बुद्ध, महावीर, स्वामी विवेकानंद
और महात्मा गाँधी के लाता है विचार

इसीलिए कभी वो तुलसी, कबीर, रसखान
कभी भारतेन्दु, हरिश्चन्द्र, प्रेमचंद कभी महादेवी वर्मा
कभी पंत, निराला आदि बनकर जन्म लेता है
पर कवि के सपने कभी मरते नहीं हैं
वो आगे आनेवाले कवियों के शब्दों में जिंदा रहते हैं।

आलेख

समकालीन हिंदी कहानियों में चित्रित किन्नर विद्रोह

रामेश्वर महादेव वाढ़ेकर
प्राध्यापक
देवगाँव, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
मो.–9022561324

प्रस्तावना :

साहित्य के क्षेत्र में दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श किसान विमर्श, बाल विमर्श, वृद्ध विमर्श, वेश्या विमर्श, मुस्लिम विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, किन्नर विमर्श आदि परिस्थिति के अनुरूप निर्माण हुए। इनमें से किन्नर विमर्श पर तत्कालीन समय बहुत चर्चा हुई, वर्तमान में भी हो रही है। किन्नर समुदाय का प्राचीन काल से शोषण होता आया है, आज भी जारी है। वे वर्तमान में अधिकार से वंचित हैं, प्रावधान होने के बावजूद सिर्फ उनपर साहित्य लिखकर कोई मतलब नहीं, उनके भाव को समझना पड़ेगा, समाज में उन्हें सम्मान देना होगा, तब विमर्श की चर्चा सफल होगी।

हिंदी साहित्य में किन्नर समाज पर अनेक विधा में लेखन हुआ है, वर्तमान में भी लेखन जारी है। परन्तु कहानी के माध्यम से किन्नर समुदाय की समस्या पर बेहतरीन चर्चा हुई। कहानी में किन्नर अत्याचार सहता नहीं, विद्रोह करता है। अनेक कहानियाँ किन्नर की त्रासदी पर लिखी गई, जिनमें प्रमुख कहानियाँ हैं– 'संज्ञा'–किरण सिंह, 'कुकुज नैस्ट'–कमल कुमार, 'कबीरन'– सूरज बडत्था, 'मन मरीचिका'–विमलेश शर्मा, 'खलीक अहमद बुआ'–राही मासूम रजा, 'बीच के लोग'–सलाम बिन रज़ाक, 'त्रासदी'–महेन्द्र भीष्म, 'लेग लवलेश'–दत्त, 'बिन्दा महराज'– शिवप्रसाद सिंह, 'ई मुर्दन के गाँव'–कुसुम अंसल, 'हिजड़ा'– कादंबरी मेहरा, 'इज्जत के रहबर'–पद्मा शर्मा, 'कौन तार से बिनी चदरिया'–अंजना वर्मा, 'रतियावन की चेली'–ललित शर्मा, 'संकल्प'–विजेन्द्र प्रताप सिंह, 'खुश रहो क्लिनिक'–चाँद दीपिका आदि। कहानियों के माध्यम से रचनाकारों ने किन्नर समाज की त्रासदी समाज के सम्मुख रखी। सिर्फ त्रासदी बताने से कुछ नहीं होगा, उनके साथ प्रेमभाव से बर्ताव करने की आवश्यकता है। उन्हें समझना जरूरी है। सिर्फ किन्नर समाज पर लिखा साहित्य पढ़कर कुछ नहीं होनेवाला, उसे विचार–आचरण में लाने की नितांत आवश्यकता है। आज भी किन्नर समुदाय पर अत्याचार होता है। उन्हें न्याय नहीं मिलता। यह परिस्थिति बदलनी चाहिए।

समकालीन कहानियों में किन्नर समुदाय का संघर्ष चित्रित है, साथ ही विद्रोह! कहानियों के किन्नर पात्र अन्याय सहते नहीं, विद्रोह करते है समाज से। उन विद्रोह को हम निम्न कहानियों से समझने की कोशिश करते हैं।

मनुष्य की हीन मानसिकता के प्रति विद्रोह :

किन्नर समुदाय के प्रति समाज का देखने का दृष्टिकोण कल भी हीन था, आज भी हीन है। किन्नर को बहुत–से लोग मनुष्य नहीं, जानवर समझते हैं। संघर्ष जन्म से जुड़ा है उनके साथ। उनका अपमानित होना तय है समाज से। उन्हें ज्यादा वेदना हीन मानसिकता से होती है समाज से। वर्तमान में पढ़े–लिखे किन्नर अन्याय सह नहीं रहे, विद्रोह कर रहे हैं। यह समय की माँग भी है।

हीन मानसिकता पर किरण सिंह 'संझा' कहानी से प्रहार करती है। 'संझा' नामक पात्र से किन्नर समुदाय का विद्रोह दिखाया। कहानी में पिता वैद्य जी 'संझा' को बहुत पढ़ाना चाहता है, पढ़ाते भी हैं। किंतु 'संझा' की माँ उसके भविष्य को लेकर चिंतित रहती है। कुछ वर्ष पश्चात् माँ का देहांत होता है। कालांतर से समाज के कई मनुष्य को 'संझा' किन्नर है, समझ आता है। वे उसकी तरफ हीन नजर से देखते हैं। एक दिन उसे नग्न करने की कोशिश की जाती है समाज के मनुष्य से। तब 'संझा' मनुष्य की हीन मानसिकता के प्रति विद्रोह करती है–''न मैं तुम्हारे जैसा मर्द हूँ, न मैं तुम्हारी जैसी औरत हूँ। मैं वो हूँ, मुझमें पुरुष का पौरुष है और औरत का औरतपन, तुम मुझे मारना तो दूर, अब मुझे छू भी नहीं सकते।'' 1

वर्तमान में 'संझा' की तरह किन्नर हीन मानसिकता का विरोध कर रहे हैं। होना भी चाहिए। किन्नर समुदाय के प्रति मनुष्य को मानसिकता बदलनी होगी, तभी किन्नर सुकून से जीएगा।

सरकार के प्रति विद्रोह :

किन्नर समुदाय प्राचीन काल से अधिकार से वंचित रहा। खुद की पहचान समाज में नहीं थी, वर्तमान में भी नहीं। आज संविधान होने के बावजूद उनके अधिकार का हनन होता है समाज से। वर्ष 2014 तक उनका लिंग निश्चित नहीं था, प्रगति तो बहुत दूर। उन्हें वोट का अधिकार नहीं था, लोकतंत्र के देश में किन्नर समुदाय के लिए सरकार की ओर से योजना न के बराबर। योजना की घोषणा वर्तमान में होती है, किंतु योजना सिर्फ कागज पर। ऐसी कई समस्या कमल कुमार ने 'कुकुज नैस्ट' कहानी में प्रस्तुत की है। कहानी में किन्नर सरकार प्रति विद्रोह करता है–''सरकार हमें पहचान पत्र देती है क्या? वोट देने देती है क्या? पर हम इस देश मैं रहते हैं न! इसी देश के नागरिक हुए ना!''[2]

इक्कीसवीं सदी में किन्नर समुदाय संघर्ष कर रहा है, अधिकार के लिए। किन्नर समुदाय के लिए संविधान में प्रावधान होने के पश्चात् सरकार कुछ नहीं करती। समाज नहीं स्वीकारता। किन्नर समुदाय शिक्षित हो, यह न समाज को लगता है, न सरकार को। किन्नर समाज की समस्या पर चिंतन करने की आवश्यकता है, तभी उनमें बदलाव संभव है, अन्यथा नहीं।

अत्याचार प्रति विद्रोह :

किन्नर से जन्मतः जुड़ी समस्या है अत्याचार। अत्याचार मूलतः परिवार से शुरू होता है, समाज से नहीं। वर्तमान परिस्थिति में किन्नर अत्याचार में जल रहा है, कानून होने के बावजूद! यह देश के लिए शर्म की बात है। देश स्वतंत्र हुआ, किंतु किन्नर समाज नहीं। उन्हें संविधान ने बहाल किए मूलभूत अधिकार नहीं मिले। समाज आज भी किन्नर का शोषण कर रहा है शारीरिक एवं मानसिक। तब भी वे किसी को बता नहीं पाते।

किन्नर समुदाय के संघर्ष पर अनेक रचनाकार ने लिखा। वर्तमान में लिखान शुरू है। किन्नर समुदाय पर लिखित सूरज बडत्था की 'कबीरन' कहानी बहुत चर्चित रही। उन्होंने 'कबीर' कहानी से किन्नर की त्रासदी बयाँ की है। 'कबीरन' को परिवार के सदस्य आश्रम में भेजते हैं, समाज के कारण। वहाँ वह सुरक्षित नहीं रहती। उस पर बलात्कार होता है। वह अत्याचार नहीं सहती, समाज से विद्रोह करती है, पर मैं किसे बताती कि मेरे साथ कौन विश्वास करता कि हिजड़े के साथ बलात्कार हुआ। कहीं किसी कानून में लिखा है कि हिजड़े के साथ बलात्कार की क्या सजा है। समाज न तो हमें स्त्री मानता है और न ही पुरुष।''3

किन्नर वर्तमान में सुरक्षित नहीं है। खुलेआम उनपर बलात्कार हो रहे हैं। मानसिक शोषण जारी है। दोषी व्यक्ति के खिलाफ तकरार दाखिल की, तो भी न्याय नहीं मिलता। उन्हें ही दोषी ठहराया जाता है। समाज ने किन्नर के साथ इन्सान के रूप में पेश आना चाहिए, तभी समाज में सही समानता स्थापित होगी।

परिवार प्रति विद्रोह :

किन्नर का साथ न परिवार देता है, न समाज। वह जिंदगी बेवारीस बनकर गुजारता है। जिंदगी का सबसे बड़ा दुख है परिवार से दूर रहना। वह भी कायम का। यह दुर्भाग्य किन्नर के जीवन में आता है। सब रिश्ते होने के बावजूद उनसे कोई रिश्ता नहीं रखता। वह सबके लिए मरा है।

किन्नर समुदाय के पारिवारिक समस्या पर लिखित महत्त्वपूर्ण कहानी है–'बिन्दा महराज' शिवप्रसाद सिंह की यह प्रसिद्ध कहानी रही। कहानी में 'बिन्दा महराज' के माता–पिता का देहांत जल्द होता है। बिन्दा महराज अकेली जीती है, संघर्ष करके। वह चचेरे भाई की बेटी 'करीमा' से बहुत प्रेम करती है। किंतु उन्हें प्रेम के बदले चचेरे भाई से अपमान मिलता है। चचेरे भाई उसे घर से निकाल देते हैं। बिन्दा महराज रोती नहीं, हार भी नहीं मानती। चचेरे भाई से विद्रोह करते हुए कहती है–था ही कौन अपना, जो पैरों में रेशमी बेड़ियाँ डालकर रोक रखता। माँ–बाप एक प्राण–हीन शरीर उपजा कर चले गए। मर्द होता तो बीवी–बच्चे होते, पुरुषत्व का शासन होता, स्त्री भी होती तो किसी पुरुष का सहारा मिलता।''[4]

वर्तमान में किन्नर को परिवार में रखा नहीं जाता, अपमान की वजह से। एक तो उसे मार दिया जाता है, या किन्नर समुदाय में छोड़ा जाता है। दोन्हों जगह उसका शोषण ही। समाज किन्नर की जिंदगी नरक बना रहा है। किन्नर मनुष्य ही तो है। उसके शरीर में जो शारीरिक बदलाव होते हैं, वह नैसर्गिक आज के युग में परिवार समाज को मानसिकता बदलने की जरूरत है, तभी किन्नर का जीवन बर्बाद होने से बचेगा...!

रूढ़ि–परंपरा प्रति विद्रोह :

शोषण का दूसरा नाम है किन्नर समाज। जन्म से लेकर मृत्यु तक किन्नर का शोषण होता है परिवार एवं समाज से। परिवार समाज की त्रासदी से मुक्ति पाने हेतु वे किन्नर समुदाय में शामिल होते हैं, इच्छा न होने के बावजूद वहाँ भी उनका शोषण रूढ़ि–परंपरा के नाम जारी रहता है। वे वहाँ भी रहना नहीं चाहते, किंतु मजबूरी में रहना पड़ता है। कई बार भागने की कोशिश करते हैं, किंतु सफल नहीं होते। परिणाम अत्याचार ज्यादा बढ़ता है दुख भुलने हेतु नशा करने लगते हैं। वे आज भी जी रहे हैं; किंतु मृत्यु की अवस्था में।

किन्नर समुदाय के रूढ़ि–परंपरा पर प्रहार करनेवाली महत्त्वपूर्ण कहानी है–'कुकुज नैस्ट'। कमल कुमार कहानी के माध्यम से रूढ़ि परंपरा प्रति विद्रोह करते हैं। मनुष्य के जान से बढ़कर कोई परंपरा महत्त्वपूर्ण नहीं। किन्नर समुदाय में लिंग काटने की परंपरा प्राचीन है। वर्तमान में भी दिखाई देती है। किन्नर का लिंग काटते समय अनेक की जान जाती है। लिंग काटने की परंपरा पर कमल कुमार भाष्य करते हैं–बिना किसी डॉक्टरी सुविधा के तेज चाकू से एक ही वार से काट दिया जाता है। उसके चार लोग हाथ–पैर को पकड़े रहते हैं। दर्द से कई बच्चों की मौत भी हो जाती है। लिंग काटकर उन्हें कई दिनों सीधा लिटा दिया जाता है। उस पर कई किलो तेल लगाकर डाल दिया जाता है।''5

आज भी यह परंपरा प्रचलित है। कुछ स्वार्थी लोग किन्नर समुदाय से बिजनेस करना चाहते हैं। इसलिए वे लाल दिखाकर कई किन्नर का लिंग काटते हैं, घर पर। परिणाम अनेक की मृत्यु हो रही है। परंपरा, बिजनेस के नाम लिंग काटा जाता है, वह बंद होना चाहिए। इसके साथ ही किन्नर समुदाय की दूसरी प्रथा प्रचलित है, वह भी बंद हो।

निष्कर्ष : वर्तमान में परिवार और समाज से किन्नर लड़ रहा है, हक्क के लिए। समाज में वह पुरुष एवं स्त्री के मध्य बिंदु पर खड़ा है। अपूर्णता के कारणवश समाज उन्हें स्वीकारता नहीं, किंतु शोषण निरंतर करता है। किन्नर समुदाय में परिवर्तन लाना है, तो सरकार को ध्यान देने की जरूरत है। इसके साथ ही गैर–सरकारी संगठन सहकार्य की आवश्यकता है।

किन्नर समुदाय प्रति समाज की मानसिकता बदलनी जरूरी है। साथ ही उन्हें हरक्षेत्र में प्रतिनिधित्व मिले। तब वे इन्सान के रूप में खड़े होंगे समाज में। जिंदगी में संघर्ष कम होगा। वे मुक्त रूप में जिएँगे समाज में...!

संदर्भ संकेत–

1, सं. एम. फिरोज खान 'थर्ड जेंडर : हिंदी कहानियाँ, अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रकाशन, कानपुर– 208001 प्रथम संस्करण–2018, पृ. 79
2. सं. सपना सोनकर 'नागफनी' जनवरी–मार्च, 2022, त्रैमासिक पत्रिका, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली– 11002, पृ. 197
3. सं. एम. फिरोज खान 'थर्ड जेंडर : हिंदी कहानियाँ, अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रकाशन, कानपुर– 208001 प्रथम संस्करण–2018, पृ. 17
4. सं. एम. फिरोज खान 'थर्ड जेंडर : हिंदी कहानियाँ, अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रकाशन, कानपुर– 208001 प्रथम संस्करण–2018, पृ. 26
5. सं. सपना सोनकर 'नागफनी' जनवरी–मार्च, 2022, त्रैमासिक पत्रिका, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली– 11002, पृ. 197

कविता

दो वर्ष पहले

नेतलाल यादव
उत्क्रमित उच्च विद्यालय शहरपुरा
जमुआ, गिरिडीह (झारखंड)

दो वर्ष पहले ही
हुई थी शादी
एक बड़ी रकम देकर
कर्ज़ के बोझ तले दबकर
टूट गयी थी कमर
कर्ज़ तोड़कर अभी
गहरी साँस लिये ही थे
दामाद ने माँगा बुलेट
फिर होने लगी उलझन
सताई जाने लगी बेटी

फूल–सी कल्पना
मुरझाई दो साल में
बेटी को देखकर
पिता ने बनाया मन
जमा करने लगे
हर महीने कुछ धन
बोले दामाद जी
जल्द करूँगा भेंट
कल्पना को खुश रखिये
कहाँ बनता है बुलेट
पर कृतघ्न दामाद को

नहीं हो पाया विश्वास
पिछले सप्ताह ही
कर दिया सत्यानाश
एक दिन घरवालों ने
कल्पना का गला दबाया
मर गई आपकी बेटी
यह ख़बर पहुँचाया
ख़बर सुनकर
माता–पिता का हुआ बुरा हाल
पर हत्यारों को

कहाँ था कोई मलाल
उनके लिए था, एक खेल
खुशी–खुशी, चल गये जेल
जेल से फिर आयेंगे
यही समाज, सेहरा सजाएँगे
भूल जाएँगे, किसी को मारा है
यह एक हत्यारा है, हत्यारा है।

आलेख

तुलसीकृत 'मानस' में मूल्य चेतना

डॉ. अमर सिंह बधान
प्रोफेसर एमरिट्स, डी.लिट्.
3150, सेक्टर 24 डी, चंडीगढ़
मो. 9876301085

तुलसीकृत 'रामचरितमानस' में मूल्य दृष्टि एवं 21वीं सदी में इसकी आवश्यकता, प्रासंगिकता की परख पहचान करने से पहले 'मूल्य' शब्द के अर्थ, इसके स्वरूप को समझ लेना संगत होगा। मोटे तौर पर 'मूल्य' मानवीय सद्गुणों के वे आधारभूत तत्त्व और आदर्श हैं, जिनके अनुपालन से ही व्यक्ति एक अच्छा मानव कहलाने का अधिकारी बनता है। जीवन की दिशा, गति एवं सार्थकता मूल्यों पर आधारित है। मूल्य का सीधा संबंध मनुष्य के नैतिक दायित्व और विवेक से भी है। नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर मूल्य मंगलकारी धारणाएँ होती हैं, जो आगे चलकर मनुष्य को संपूर्ण बनाने में मददगार बनती हैं। जीवन की विधिवत् सुरक्षा तथा संतुलित विकास मूल्यों के बिना संभव नहीं है। यह भी कि मूल्य से ही सत्य को समझने, परखने, देखने और आत्मसात करने की शक्ति प्राप्त होती है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें तो मूल्य व्यष्टि और समष्टि से जुड़ा हुआ अनुभव इसकी रचना में संवेग, भावना और बौद्धिक संवेदन योग देते हैं। निस्संदेह, मूल्य की सत्ता चिरकालिक है। प्राचीन विचारधारा में सत् को चरम मूल्य के रूप में स्वीकारने का संकेत मिलता है। मनुष्य के लिए सत्य उसके चरम ज्ञान में व्यक्त होता है और चरम ज्ञान ही उसके जीवन को सुखी बनाता है। कहना न होगा कि सुख ही मूल्य का आधार है। वैसे मूल्य का सीधा और गहरा संबंध संवेदनात्मक व्यक्तित्व से होता है। यहाँ स्पष्ट कर दें कि मूल्य और मूल्य बोध का पारस्परिक घनिष्ट संबंध है। ये दोनों ही सार्थकता से जुड़े हुए हैं, क्योंकि सार्थकता के अनुभव से ही मूल्य दोनों ही आत्मज्ञान के द्योतक हैं।

बोध और मूल्य उपजते हैं। एक अन्य विशिष्ट अर्थ में ये इसमें दो राय नहीं कि 'मानस' में लगभग सभी वैदिक मूल्यों का समर्थन मिलता है तथा आधुनिक मूल्यों के कई प्रखर संकेत भी मिलते हैं। यह काव्य हमें जीवन जीने और जीवन की ओर उन्मुख रहने की दृष्टि देता है। यह विराट काव्य कृति व्यष्टि और समष्टि के प्रति पावन मंगलमयी भाव राशि का अगाध सागर है, जिसके आलोक में मनुष्य का सुसंस्कृत और परिष्कृत रूप झिलमिलाता है। आश्चर्य नहीं कि 'मानस' में तुलसी ने इतने उत्तम और इतने अधिक सांस्कृतिक एवं नैतिक तत्त्व प्रभावशाली ढंग से उकेरे हैं, जितने शायद हिन्दी वाङ्मय के शेष समस्त कवि सामूहिक रूप से भी न दे सके होंगे। इस ग्रंथ में ऋतु एक ऐसा अनुल्लंघनीय नैतिक नियम है, जो सृष्टि की सारी व्यवस्थाओं का नियामक है। इससे हमें सुन्दर सत्कर्मों में लगे रहने की प्रेरणा मिलती है तथा नैतिक व्यवस्थाओं का दृढ़तापूर्वक अनुपालन करने का संकेत भी मिलता है।

यह भी ज्वलंत सत्य है कि उदात्त नैतिक मूल्यों के अनुपालन से एक उत्कृष्ट समाज की स्थापना की जा सकती है। लोग समाज में आपसी सौहार्द, प्रेम, शांति और सौमनस्य रखते हुए प्रसन्नता पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हैं। तुलसी की कामना है कि सभी लोगों के मन सबके कल्याण में एक समान हों और ईश्वर स्मरण तथा शुभ गुणों के प्रति उनका चिंतन भी समाज हो। एकता एवं समन्वय से आदर्श समाज की स्थापना की जा सकती है। बिना शक, तुलसी का 'मानस' उदात्त नैतिक मूल्यों का समुच्चय है। राम में हमें एक संवेदनशील एवं नीति प्राण मानव की पराकाष्ठा परिलक्षित होती है। उनका समय जीवन एक आदर्श है। वे मन, वचन और कर्म से नैतिक हैं तथा सामाजिक और मानवीय मूल्यों के प्रति आस्थावान हैं–

''राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।।
बयरू न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।''

(उत्तरकाण्ड)

'मानस' में बार–बार मनुष्य को प्राणिमात्र के प्रति निष्कपट, निश्छल प्रेम भाव रखने की बात कही गई है। उनके राम प्राणिमात्र के प्रति समत्व भाव के पोषक हैं तथा समग्र संसार को आत्मवत् देखते हैं। 'मानस' में शांति, सुस्थिरता और प्राकृतिक अनुकूलन की कामना की गई है। तुलसी ने सरलता, मित्रता, सत्यता, परोपकार, दया, मृदु वचन एवं नैतिकता को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। मनुष्यमात्र को पीड़ा पहुँचाना 'मानस' की दृष्टि से पाप है, लेकिन परोपकार के समान कोई पुण्य नहीं –

''सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री।।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष वचन कबहूँ नहिं बोलहिं।।
परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।''

(उत्तरकाण्ड)

कहने की जरूरत नहीं कि तुलसी के राम मर्यादित पुरुष हैं। वे स्वयं नैतिक नियमों का पालन करने के लिए संकल्पबद्ध और स्वानुशासित हैं। उनकी कथनी–करनी में कोई भेद नहीं है। मानसकार ने अपनी कृति में 'दान' का भी कई स्थानों पर समर्थन किया है। उनकी दृष्टि में याचक के अभाव को दूर करना ही मानवीय सदाशयता एवं नैतिकता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। वे बार–बार रामराज्य की जनता को धर्म मार्ग में चलनेवाली धर्म परायण बताते हैं। उनके रामराज्य में 'धर्म' सत्य, शुचिता, दया और दान में खड़ा है। आपसी प्रेमपूर्वक व्यवहार से समाज में दुःख, द्वेष और अशांति की कल्पना नहीं की जा सकती। राजा को एक आदर्श समाज में साम, दाम, दंड, भेद–इन उपायों के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ती–

''दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहिं व्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।''

(उत्तरकाण्ड)

उल्लेखनीय है कि जीवन के जितने भी नैतिक आदर्श हैं, उनका आधार सत्य है। सत्य में ही वास्तविकता की ओर अच्छे भले, सबके कल्याण की भावना निहित है। सत्य को सबसे बड़ा धर्म माना गया है। 'शतपथ ब्राह्मण' में कहा गया है, 'जो धर्म है, निश्चित ही वह सत्य है।' ऋग्वेद' में भी कई स्थानों पर सत्य का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। दरअसल, सत्य किसी अन्य को कष्ट पहुँचाने से तथा स्वार्थ हेतु मनुष्य को झूठ में प्रवृत्त होने से बचाता है। 'मानस' में नैतिक मूल्यों के अंतर्गत सत्य को सर्वोच्च स्थान मिला है–

''नहिं असत्य सम पालक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा।।
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान विदित मनु गाए।।''

(अयोध्याकाण्ड)

मनुष्य के सुखद और संतुलित जीवन के लिए सत्य परम मार्गदर्शक एवं परामर्शदाता है। जिस प्रकार एक मंत्री अपने परामर्श से राजा को उचित–अनुचित का विवेक देता है, उसी प्रकार सत्य व्यक्ति को सन्मार्ग की ओर लगाता है। इसीलिए तुलसी 'सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी' कहकर सत्य को मनुष्य का मंत्री की उपमा देते हैं। ये सत्य की रक्षा हेतु दशरथ के प्राण त्याग

को भी उचित ठहराते हैं। भारद्वाज भी दशरथ को सत्य रक्षा के प्रति तत्पर जानकर उनकी प्रशंसा करते हैं। तुलसी भी राम को स्वाभाविक रूप से सत्यवादी बताते हुए उनकी सराहना करते हैं–

''राम सत्य व्रत धरम रत, सब कर सीलू सनेहु ।''

(अयोध्याकाण्ड)

दार्शनिक दृष्टि से देखा जाए, तो किसी भी उत्कृष्ट कृति में दो प्रकार के मूल्य पाए जाते हैं–सामयिक और शाश्वत सामयिक मूल्य अपने समय की अपेक्षाओं की प्रतिपूर्ति करते हैं और शाश्वत मूल्य जीवन के चिरंतन तत्त्वों से सायुज्य होने के कारण समय और परिवेश के परिवर्तित हो जाने पर भी अपनी महत्ता बनाए रखते हैं। 'मानस' में प्रतिपादित नैतिक मूल्य अपने युग में भी प्रतिष्ठित एवं प्रासंगिक थे और इस नई सदी में भी उनका महत्त्व अक्षुण्ण है। कारण यह कि तुलसी ने अपने युग की अपेक्षाओं को पूरा करते हुए युग धर्म का निर्वाह उत्कृष्टता से तो किया ही है, साथ ही अपनी शाश्वत चेतना और चिरंतन जीवन मूल्यों द्वारा सनातन प्रश्नों के तर्कसंगत उत्तर भी खोजे हैं। 'मानस' में न्याय, आत्मसंयम, त्याग, तपस्या, सत्य, प्रेम, परोपकार, नैतिकता का संरक्षण, शांति और सह अस्तित्व के बृहत्तर जीवन मूल्यों को समर्थन प्राप्त है। तुलसी की मूल्यपरक स्थापनाएँ शाश्वत होने के कारण उन्हें आधुनिक युग से जोड़ती हैं, उनकी उपादेयता स्थापित करती हैं।

नैतिक मूल्य शाश्वत जीवन मूल्य है। लेकिन 21वीं सदी के इस भौतिकवादी सामाजिक माहौल में इनके विलुप्त होने का संकट गहरा रहा है। सत्य पर असत्य, शांति पर अशांति, अहिंसा पर हिंसा, अनुशासन पर अनुशासनहीनता, नैतिकता पर अनैतिकता, समानता पर असमानता, आध्यात्मिकता पर भौतिकता, प्रेम पर घृणा और परहित पर निजहित की काली पर्त जमती जा रही है। रिश्तों में कृत्रिमता, चरित्रहीनता, अन्तर्वैयक्तिक संबंधों का विघटन, असुरक्षा, धनलोलुपता, ईर्ष्या, द्वेष आदि कुतत्त्वों का समाज में संचारण और प्रसारण बढ़ता जा रहा है। आज सबसे बड़ी चुनौती अधुनातन संचार माध्यमों से है। वैश्विक स्तर की सूचनाओं और घटनाओं का ढेर लगाकर इन माध्यमों ने अपसंस्कृति के संक्रमण का खतरा भी उत्पन्न कर दिया है। इनके

जरिए घोर अश्लीलता और वासनापरक मानसिकता का प्रवेश घर आँगनों में निर्बाध रूप से हो चला है। भौतिक उन्नति और धनोपार्जन वृत्तियों ने मनुष्य को अधिक लालची, स्वार्थी, असंतुष्ट, अधीर, असहिष्णु और हिंसात्मक बना दिया है। उपभोक्ता संस्कृति के प्रभावाधीन तनाव अधिक बढ़ा है। मनुष्य दिशाहीन मार्ग में दौड़ रहा है। ऐसी स्थिति में 'मानस' हमारी श्रेष्ठ पथ–प्रदर्शिका बन सकती है।

एक अन्य चुभनेवाली बात यह है कि अपने युग की सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक आवश्यकताओं की जैसी पहचान तुलसी ने की थी, वैसी पहचान न तो उसके समकालीन एवं समानधर्मी कर पाए और ना ही 21वीं सदी के रचनाकार कर पा रहे हैं। इससे भी महत्त्वपूर्ण यह तथ्य है कि तुलसी का चिंतन सार्वभौमिकता, सर्वकालिकता और शाश्वत सत्य से जुड़ा था। विश्वास किया जाना चाहिए कि 'मानस' के उदात्त नैतिक 'मूल्य' वर्तमान मानव एवं समाज की कुंठा, संत्रास, संदेह, विद्वेष, दुविधा, हिंसा, आतंक एवं असंतोष के उन्मूलन में सहायक सिद्ध होंगे।

3950, सेक्टर 24 –डी, चंडीगढ़ – 160023, मो. –9876301085

कविता

समीर उपाध्याय
मनहर पार्क 96 ए, चोटीला–363520
मो.–9265717398

एक हुए जैसे चाँद–चकोरी

आ गई वसंत की शाही सवारी
मैं करूँ अँखियों में काजल सखी री
मैं करूँ होंठों पे लाली सखी री

आ गई वसंत की शाही सवारी
मैं पहनूँ गूंजा की माला सखी री
मैं पहनूँ पीला अम्बर सखी री।

आ गई वसंत की शाही सवारी
मैं धरूँ सिर पे मयूर–पंख सखी री
मैं ओढूँ हरियाली चुनरी सखी री

आ गई वसंत की शाही सवारी
मैं बजाऊँ चंग–डफली सखी री
मैं गाऊँ फाग के गीत सखी री

आ गई वसंत की शाही सवारी
मैं उड़ाऊँ अबीर–गुलाल सखी री
मैं छिड़कूँ चंदन–केसर सखी री

आ गई वसंत की शाही सवारी
मैं जाऊँ गायों को चराने सखी री
मैं खेलूँ ग्वाल–बाल संग सखी री

आ गई वसंत की शाही सवारी
मैं धरूँ अधर पे मुरली सखी री
मैं बजाऊँ सात सूर संगम सखी री

आ गई वसंत की शाही सवारी
मैं खोऊँ सुध–बुध सखी री
मैं रंगाऊँ कान्ह के रंग में सखी री

आ गई वसंत की शाही सवारी
मैं बिसरूँ खुद को पल में सखी री
मैं बनूँ कान्ह–प्रिय अष्टरानी सखी री

मैं बनूँ केशव की कालिंदी सखी री
मैं बनूँ जगदीश की जांबवती सखी री
मैं बनूँ भुवराय की भद्रा सखी री
मैं बनूँ मुरलीधर की मित्रबिंदा सखी री
मैं बनूँ साँवरे की सत्यभामा सखी री
मैं बनूँ श्याम की सत्या सखी री
मैं बनूँ रमण की रुक्मिणी सखी री
मैं बनूँ लक्ष्मीकांत की लक्ष्मणा सखी री

आ गई वसंत की शाही सवारी
मैं कैसे भूलूँ राधा संग प्यारी
मैंने तो राधा संग सुध–बुध खोई
एक हुए जैसे चाँद–चकोरी
एक हुए जैसे चाँद–चकोरी
एक हुए जैसे चाँद–चकोरी।

आलेख

बालक की प्रथम पाठशाला ही परिवार है

शंकरलाल माहेश्वरी
पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी
पोस्ट–आगूचा जिला भीलवाड़ा (राजस्थान)
मो. 9413781610

कहा गया है कि बालक अपना प्रथम पाठ माँ के चुम्बन और पिता के प्यार से ही सीखता है। वस्तुतः परिवार ही बालक की प्रथम पाठशाला है। जहाँ अपने परिजनों की छाया तले बैठकर अपनी सुषुप्त क्षमता व प्रतिमा को उजागर करता है। माता पिता को तथा परिजनों को अपने कार्य–व्यवहार से बालक का उचित पोषण करना चाहिए, ताकि वह उत्तम जीवन–यापन की शिक्षा ग्रहण कर सके। सामाजिक प्राणी होने के कारण बालक में उन दक्षता का आविर्भाव होना चाहिए, जो एक सामाजिक के लिए अनिवार्य होती है। परिवार में रहकर जहाँ बालक कर्तव्य–पालन का पाठ सीखता है, वहीं उसके नैतिक गुणों का भी विकास होता है। बाल्यावस्था ही से बालक की गतिविधियों वृत्तियों और आदतों का आकलन करते हुए उसे सही दिशा में अग्रसर करना माता पिता का उत्तरदायित्व है। वही समाज विकसित माना जाता है, जिसके सभी सदस्य मानवीय गुणों को जीवन का आधार बनाकर जीवन जीने का सद्प्रयास करते हैं।

आज का बालक कल का नागरिक होता है। अतः एक उत्तम कोटि का नागरिक बनने के लिए सहयोग की वृत्ति सहिष्णुता
नैतिकता, उदारता, सदाशयता, अनुशासन, श्रमनिष्ठा तथा सम्मान भावना और अन्य मानवीय मूल्यों को जीवन का आधार बनाना होता है। इन सारे संस्कारों का आविर्भाव माता–पिता के दिशा निर्देश या कार्य–व्यवहार पर निर्भर है, जहाँ बालक देखकर, सुनकर सीखता है। भारतीय परिवार–प्रणाली में पुरातन काल ही से बालक अपने दादा–दादी की गोद में बैठकर नीति कथाओं का श्रवण करते हुए ज्ञान अर्जित करता आया है। आज भी घर–परिवारों में यह परम्परा विद्यमान है। बालक परिवार में रहकर यहाँ की सेवा, परिजनों का आज्ञापालन, गृहकार्य में सहयोग, माता–पिता का सम्मान, कार्य–व्यवहार में शालीनता, श्रमकार्य में भागीदारी तथा सेवा के अवसर प्राप्त कर जीवनोपयोगी आदर्शों का अनुगमन करता है। यहीं उसको उत्तम नागरिकता की दिशा में प्रवृत्त करती है। बालक की जिद्दी प्रवृत्ति, अनुशासनहीनता, अशिष्टता तथा असभ्यता की दिशा में अग्रसर होने की स्थिति में माता–पिता का ही नियंत्रण औषध स्वरूप बन जाता है। बालक की निजी समस्याओं के समाधान हेतु माता–पिता संवेदनशील रहे तथा बालक को निकट से समझने के लिए उसके पास बैठने का समय भी निकाल सके। अभिभावक का दिशा की बोध बालक की विकास यात्रा में पूर्णतः सहयोगी होता है।

बालक पर अनावश्यक दबाव, शोषण तथा धिक्कारना, पीटना और भयभीत करना, उसके साहस व उत्साह को कुण्ठित करता है तथा उसकी प्रगति में बाधक हो जाता है, उसे पारिवारिक परिस्थितियों से अवगत कराते हुए मार्गदर्शन देना चाहिए। आचरण सुधार के लिए बालक को समय–समय पर नीति कथाएँ, बोध कथाएँ तथा लघु कथाएँ, कहानियों से उसने वैचारिक समरसता पैदा की जा सकती है। प्राचीन काल में बिगड़ैल राजकुमारों के आचरण सुधार हेतु विष्णु शर्मा जैसे गुरु पंचतन्त्र, हितोपदेश व मित्र लाभ की बोध कथाएँ व प्रेरक प्रसंग सुनाकर उनका मार्ग प्रशस्त करते थे। परिवार में रहकर बालक को रोगी सेवा, समाजोपयोगी कार्य तथा श्रम कार्य के लिए प्रेरित करना चाहिए बालकों की नेतृत्व क्षमता का भी विकास हो, इसके लिए परिवार में पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाए।

परिवार में रहकर बालक अपनी निजी क्षमताओं का विकास करता है तथा सामाजिक जीवन जीने की तैयारी भी करता है। आवश्यकता इस बात की है कि माता–पिता अपनी सन्तान को उसकी कार्यक्षमता, दक्षता तथा कुशलताओं को उजागर करने के लिए पर्याप्त अवसर व मार्गदर्शन प्रदान करे। बालक को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उसे श्रम कार्य हेतु प्रवृत्त करना जरूरी है। पारिवारिक जीवन में रहकर उसे व्यावसायिक बोध भी देना आवश्यक है। यदि माता–पिता का उत्तम आचरण श्रेष्ठ जीवनशैली है, बच्चों के प्रति अगाध स्नेह और सम्मान भावना है, तो बालक निश्चित रूप से प्रगतिशील बनेगा। जिस परिवार में अनैतिक आवरण, कुण्ठित व्यवहार, झगड़ालू दृश्य, बेईमानी, क्रूरता और अनैतिकता का वातावरण होगा, उस परिवार के बच्चे बिगड़ैल होंगे और आगे जाकर उनकी गणना असामाजिक तत्त्वों में होने लगेगी, अतः माता पिता को अपने व्यवहार, आचरण तथा दिनचर्या में अपना आदर्श स्वरूप प्रस्तुत करना आवश्यक है, जिसका सीधा प्रभाव बालकों के कोमल मन पर पड़ता है और वे प्रभावित होते है।

बालक को कठिनाइयों का मुकाबला करना भी सिखाएँ, उसे निडर बनाने का प्रयत्न करे, बेईमानी से दूर रखते हुए सफल जीवन जीने की शिक्षा दें, ताकि आगे जाकर वह उन मार्ग का अनुसरण कर सकेगा। अधिकांशतः देखा गया है कि जो सन्तान आगे जाकर चोरी, डकैती गुंडागर्दी और असामाजिक कार्यों में लिप्त होती है, उनका पारिवारिक परिवेश अत्यधिक दूषित होता है। ऐसे वातावरण में रहकर ही बालक दूषित प्रवृत्तियों को अपनाते हुए आगे जाकर असामाजिक बन जाता है। परिवार में रहकर बालक अपने माता–पिता के श्रीचरणों में बैठकर उत्तम कोटि के संस्कार अर्जित करता है। बालक को माता–पिता की सेवा, ईश वन्दना, घर की साफ–सफाई, रोगी–सेवा, गरीबों के प्रति संवेदनशीलता, ईमानदारी, पारिवारिक कार्यों में भागीदारी, परिजनों का आज्ञापालन, बड़ों के प्रति सम्मान भाव तथा राष्ट्रीय महत्त्व के कार्यों में संलग्न होने की सीख मिलती रहे, तो कल का यह नागरिक श्रेष्ठ समाज–सुधारक के रूप में प्रस्तुत होगा। परिवार में रहते हुए बालक को जनसंख्या नियन्त्रण, जल संरक्षण, पौधारोपण भ्रूणहत्या, अशिक्षा, महिला–उत्पीड़न और सरकारी योजनाओं की जानकारी मिल सके, तो प्रसंगानुसार प्रयास करना चाहिए। यदि परिवार में ही बालक को उचित दिशा बोध मिलता रहेगा, तो आगे जाकर विद्यालयी शिक्षा में भी वह अग्रगण्य रहेगा। उसे विद्यालय की गतिविधियों द्वारा अर्जित संस्कारों को प्रगाढ़ता मिलेगी और वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी के रूप में शिक्षा ग्रहण करने में सफलता अर्जित करते हुए कीर्तिमान स्थापित कर पायेगा।

आज का युग वैज्ञानिक युग है सूचना और तकनीकी के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है। आज भी स्मार्ट फोन पर अपनी अंगुलियाँ थिरकाते नहीं थमते। कम्प्यूटर का प्रारम्भिक ज्ञान भी अधिकांशतः घर में मिल जाता है। जो परिवार साधन सम्पन्न है, उन्हे बच्चों को नवीनतम तकनीकी ज्ञान के लिए प्रेरित करना चाहिए। वर्तमान शासन व्यवस्था में काफी फेरबदल हो रहा है। केशलेश लेनदेन पर बल दिया जा रहा है। राष्ट्र की लोक कल्याणकारी योजनाओं से भी परिचय मिल सके, ऐसा प्रदान किया जाए, तो बच्चों के भावी जीवन में उपयोगी सिद्ध होगा, जो बालक सामान्य से हटकर विशेष ऊर्जावान होते हैं, कभी–कभी उनकी अपराध प्रवृत्ति से अभिभावक पीड़ित हो जाते हैं। इसके लिए उनकी असामान्य वृत्ति का मार्गान्तरीकरण करना चाहिए। जिस प्रकार बाढ़ का अपार जलप्रवाह खेतों को नष्ट कर सकता है। यदि उस बाढ़ की राह को मोड़ कर नहरों के रूप में परिवर्तित कर दिया जाए, तो वही बाढ़ का

पानी उत्पादक बन सकता है। यही दशा अपराधी बालकों की है। उनकी अतिरिक्त ऊर्जा का सदुपयोग करने की आवश्यकता है। ऐसे बालक अधिक प्रतिभाशाली होते हैं। जिस परिवार में पूजा–अर्चना, सत्संग और अध्यात्म से परिपूर्ण वातावरण होगा, उस परिवार के बालक विशेष रूप से सेवाभावी विनम्र, आज्ञाकारी और परोपकारी बनते हैं, क्योंकि उन्हें पारिवारिक परिवेश में बोध सुगम होता है। काल स्वच्छता के प्रति और अनुशासित जीवन–यापन करने का अवसर बालकों को मिलना आवश्यक है। अतः परिवार का वातावरण अनुकरणीय होना चाहिए।

बालकों को खेलकूद में प्रवृत्त करने के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए, इससे बालक अनुशासित बनने के साथ ही उसमें आत्मविश्वास, निर्णय क्षमता, कार्य के प्रति समर्पण के भाव मजबूत होते है। बालकों की विशेष उपलब्धियों पर उन्हें प्रशंसित भी करना चाहिए। पर्व और त्योहारों के आयोजन में बालकों को भागीदार बनाया जाए, ताकि बालकों में सुसस्कारों का संचार हो और वे हमारी सांस्कृतिक विरासत के प्रति आस्थावान बन सके। ''आपके बच्चों के पास अच्छी बुद्धि है। बस इस बात से संतोष मत कर लें। उसे बुद्धि के अच्छे संस्कारों से सिंचित कीजिए। बच्चे को सिखाएँ नहीं, करके दिखाएँ। इससे वे जल्दी सीख जाते हैं। बच्चे वो नहीं करते, जो आप करते हैं। चाह करके भी आप अपने पैर बच्चों से नहीं छुआ सकते। इसके लिए पहले आप स्वयं को अपने माता–पिता के पैर प्रतिदिन छूने होंगे। जो बात जीभ से कही जाती है, उसका प्रभाव कम पड़ता है। जो सीख जीवन में करके दी जाती है, उसका प्रभाव ज्यादा होता है।

अच्छी बातें केवल चर्चा का विषय नहीं, वो आचरण का विषय जरूर बने। आप चिल्लाओगे, तो बच्चे भी चिल्लाना सीख जायेंगे। अपने बच्चों को केवल जीविका निर्वहन की शिक्षा मत दें, अच्छा जीवन जीने की शिक्षा दें। एक श्रेष्ठ बालक का निर्माण मंदिर बनाने जैसा है।''

''बालक स्वाध्याय के प्रति रुचिशील हो। मधुर बोलना, मन में उचित विचार करना, सबसे सद्व्यवहार, परिश्रम में उत्साह,
स्वच्छता, सादगी, व्यसनों से मुक्ति, शिष्टाचार आदि गुणों का बीजारोपण माता–पिता के उचित संरक्षण में सम्भव है। पारिवारिक परिवेश में ही बालक के चरित्र का निर्माण संभव है। शरीर और मन बलवान बनते हैं। बुद्धि बढ़ती है और बालक आत्मनिर्भर बनता है।''

स्वामी विवेकानन्द

बालक की प्रथम पाठशाला परिवार है–इस आशय का एक विशिष्ट उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है। ''बेटा! तुम्हारा इन्टरव्यू लेटर आया है''–माँ ने लिफाफा हाथ में थमाते हुए कहा। यह मेरा सातवाँ इन्टरव्यू था। मैं जल्दी से तैयार होकर नियत समय 9 बजे यथास्थान पहुँच गया। एक घर में इंटरव्यू के लिए बनाए गये ऑफिस का दरवाजा खुला ही पड़ा था। मैंने बन्द किया और भीतर गया। सामने वाले कमरे में जाने से पहले ही मुझे माँ की बात याद आ गई। 'बेटा! भीतर जाने से पहले पाँव झाड़ लिया करो।' पायदान थोड़ा आगे खिसका हुआ था। मैंने सही जगह पर
रखा। पैर पोंछे और भीतर गया। एक स्वागतकर्ता बैठी हुई थी। मैंने उसे अपना इंटरव्यू लेटर दिखाया, तो उसने सामने रखे हुए सोफे पर बैठकर इंतजार करने के लिए कहा। मैं सोफे पर बैठ गया। उस पर रखे हुए तीन कुशन अस्त–व्यस्त पड़े हुए थे। घर में मिले संस्कार के अनुसार उन्हें ठीक किया। वहीं कमरे की खिड़की से कुछ गमले लगे हुए थे। एक गमला कुछ टेढ़ा–मेढ़ा पड़ा था, जो गिर भी सकता था। माँ की व्यवस्थित रहने की आदत मुझे यहाँ भी याद आ गई। मैं उठा और उस गमले को ठीक किया।

स्वागतकर्ता ने सीढ़ियों से ऊपर जाने का संकेत किया और कहा–तीन नम्बर वाले कमरे में आपका इंटरव्यू है। मैं सीढ़ियाँ चढ़ने लगा और देखा कि दिन में भी दोनों लाइटें जल रही हैं। ऊपर चढकर मैंने दोनों लाइट बन्द कर दी और तीन नम्बर वाले कमरे में पहुँच गया। यहाँ दो लोग बैठे थे। उन्होंने मुझे सामने रखी कुर्सी पर बैठने का इशारा किया और मुझसे पूछा तो 'आप कब ज्वाइन कर रहे हैं?' मुझे आश्चर्य हुआ, तो मैंने कहा–'सर! मैं कुछ समझा नहीं, इंटरव्यू तो आपने लिया ही नहीं।' इसमें समझने की क्या बात है? हम पूछ रहे हैं कि 'आप कब ज्वाइन करेंगे?' सर! यह तो आप जब कहेंगे, तब मैं ज्वॉइन कर लूँगा, लेकिन आपने मेरा इंटरव्यू कब लिया?' वे दोनों सज्जन हँसने लगे, उन्होंने बताया–जबसे तुम इस भवन में आये, तबसे तुम्हारा इंटरव्यू चल रहा है। यदि तुम दरवाजा बंद नहीं करते, तो तुम्हारे बीस नम्बर कम हो जाते, यदि तुम पायदान ठीक नहीं रखते और बिना पाँव पोंछे ही आ जाते, तो बीस नम्बर कम हो जाते। इसी तरह जब तुम सोफे पर बैठकर उसपर रखे कुशन को व्यवस्थित किया, उसके भी बीस नम्बर थे और गमले को जो तुमने ठीक किया, यह भी तुम्हारे साक्षात्कार का हिस्सा था। अंतिम प्रश्न के रूप में सीढ़ियों की दोनों लाइटें जला कर छोड़ी गई थी ,जो तुमने बंद की थी। तब निश्चय हो गया कि तुम हर काम को व्यवस्थित करते हो और इस जॉब के लिए सर्वश्रेष्ठ उम्मीदवार हो। बाहर स्वागतकर्ता के पास जाओ और अपना नियुक्ति पत्र ले लो और कल से काम पर लग जाओ।

मुझे रह–रहकर माँ और पापा की छोटी–छोटी सीखें, जो उस समय बहुत बुरी लगती थी, आज याद आ रही थी। मैंने माँ–बाप के पाँव छूकर अपने इंटरव्यू का पूरा विवरण सुनाया, तो वे बहुत प्रसन्न हुए। इस प्रकार परिवार ही मेरी प्रथम पाठशाला थी।

संजय वर्मा 'दृष्टि'
बलिदानी भगत सिंह मार्ग
मनावर जिला धार (म.प्र.)

किताबें
किताबें भी कहती हैं शब्दों में
हमसे कुछ ज्ञान पाते रहो
हमें भी अपने घरों में फूलों की तरह
बस यूँ ही सजाते रहो।

किताबें बूढ़ी कभी न हो तो इश्क की तरह
ये ख्यालात दुनिया को दिखाते रहो
कुछ फूल रखे थे किताबों में यादों के
सूखे हुए फूलों से भी महक
ख्यालों में तुम पाते रहो।

आँखें हो चली बूढ़ी फिर भी
मन तो कहता पढ़ते रहो
दिल आज भी जवाँ किताबों की तरह
पढ़कर दिल को सुकून दिलाते रहो

बन जाते किताबों से रिश्ते
मुलाकातों को तुम ना गिनाया करो
माँग कर ली जानेवाली किताबों को
पढ़कर जरा तुम लौटाते रहो।

शोध आलेख

संत पलटू दास और उनका दर्शन

गोपाल 'भारतीय' मेहसी
पूर्वी चम्पारण, पिन कोड
मो– 7739103017

अध्यात्म–विभूति, वैदिक साहित्य की गरिमा से मंडित कवि परम्परा में सद्गुरु प्रातः स्मरणीय बाबा पलटूदास एक क्रान्तदर्शी ऋतम्भरा प्रज्ञाविभूषित, युक्तयोगी तथा समतावाद के पोषक, मानवतावादी ज्ञानमार्गी संत थे। उनका आविर्भाव विक्रमीय अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सम्वत् 1780 में हुआ था। फैजाबाद जिला (उत्तर प्रदेश) में तमसा नदी के तट पर अवस्थित नगजलालपुर गाँव उनकी जन्मस्थली बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सका। जिस प्रकार ब्राह्मणेतर जातियों में जन्म लेकर भी नानक, कबीर आदि संत सर्वपूज्य हो गये, उसी प्रकार संत शिरोमणि श्री पलटूदास जी ने सम्भ्रान्त वैश्य परिवार में अवतरित होकर अपने प्रभविष्णु जीवन की अलौकिक प्रक्रियाओं तथा उपलब्धियों से न केवल अपने कुल का गौरव बढ़ाया, अपितु भारतीय जनमानस और संत समाज में भी कीर्तिमान स्थापित किया। वे माता–पिता की इकलौती संतान थे। इनके पिता का नाम राम प्रसाद, माता का नाम रमादेवी तथा उनका बचपन का नाम रामलाल था।

पूर्व जन्म के संस्कारवश उनके हर क्रिया–कलाप तथा मानसिक वृत्ति में धार्मिकता परिलक्षित होने लगी थी। उन्हीं प्रवृत्तियों का बीज अंकुरित, पुष्पित एवं फलित हुआ। वे अपने प्रचण्ड संकल्प और उदात्त लक्ष्यनिष्ठा के द्वारा माता–पिता और संबंधियों के प्रेम–मोह की दीवार तोड़कर अति यौवनकाल में ही वैराग्य के उतुंग शिखर पर आरूढ़ हो गये। उनके पर में ही माता–पिता का क्रंदन देखें–

बाप हमारे रोइया, भया है कुल का नाश।
पलटू बेटा एक भा, होइगा हरि का दास ।।
पलटू की माता ठाढ़ी रोवे।ए भइय तू जिन घर को खौवे ।।

परन्तु पुत्र का निर्णय अटल रहा। इस प्रकार विरक्ति की दृढ़वृत्ति और वैराग्य की धारणा का अपरिवर्तनीय निर्णय उन्होंने ले लिया। जिस प्रकार महान् साधक एवं योगी श्री तोतापुरी जी महाराज ने श्री रामकृष्ण परमहंस देव को स्वयं बेलुड़ मठ (कलकत्ता) आकर दीक्षा दी थी, उसी प्रकार तत्कालीन सुप्रसिद्ध अद्वितीय आध्यात्मिक साधक संत श्री गोविन्द साहब ने उन्हें योग की औपचारिक दीक्षा दी। उनके ही निर्देशन में युवक रामलाल ने योग–साधना आरम्भ कर दी तथा अल्प समय में ही अपनी कुण्डलिनी जागृत कर ली। एकपद में अपने गुरु का नाम, अपनी साधनात्मक स्थिति तथा उनके अनुरूप अपने नामकरण का उल्लेख उन्होंने किया है–

पल पल में पलटू रहे, अजपा आठो जाम।
गुरू गोविन्द अस जानिके, राखा पलटू नाम।।

उनकी सुरति–निरति की साधना एक लीला हो गई थी। ब्रहारन्ध्र की साधना के वे चूड़ान्त निर्देशक थे। वे सहज समाधि तथा सहज स्वरूप के अद्वितीय साधक थे। सहज योग को ही युक्तयोग या क्रियायोग भी कहा जाता है। पातंजलि योगशास्त्र में क्रियायोग का वर्णन है–

तपःस्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि इति क्रियायोगः।

तप अर्थात् कर्मयोग, स्वाध्याय अर्थात् ज्ञानयोग और ईश्वर प्रणिधानानि अर्थात् भक्तियोग। इस प्रकार वे हठयोगी नहीं, युक्तयोगी थे। अपने एक पद में भक्ति की प्रधानता देते हुए वे कहते हैं–

एक भक्ति मैं जानौं, और झूठ सब बात।
और झूठ सब बात, करै हठयोग अनारी।
ब्रह्मदोष को लेय, काया को राखै जारी।।
प्राण करै आयाम, कोई फिर मुद्रा साधै।
धोती–नेती करे कोई ले श्वांसा बांधै।।
उनमुनि लावै ध्यान, करै चौरासी आसन।
कोई साखी शब्द, कोई तप कुश के डासन।।
पलटू सब प्रपंच है, करै सो पछितात ।
एक भक्ति मैं जानौं, और झूठ सब बात।।

शास्त्रों में भी कहा गया है–

धर्मार्थ काममोक्षाणां ज्ञान वैराग्योरपि ।
अन्तःकरण संशुद्धये भक्ति परम साधनम्।।

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ज्ञान, वैराग्य और हृदय की शुद्धि के लिए केवल एक भक्ति ही उत्तम साधन है। भक्ति अर्थात् समर्पण, प्रेम–नम्रता। इस प्रकार एक युक्तयोगी होकर भी भक्ति की प्रधानता देना उनके द्वारा गीता के निष्काम कर्मयोग का ही प्रतिपादन है। गीता में कहा गया है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'

अर्थात् हमें कर्म का अधिकार है, फल पर नहीं। उन्होंने 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की भावनाओं से उत्प्राणित नवमानव समाज की संरचना का संदेश दिया। साम्प्रदायिकता की संकीर्ण परिधि में वे आबद्ध नहीं हुए। चाहे कोई सम्प्रदाय हिन्दुओं का हो अथवा मुसलमानों का; उनके विचार रूपी गहन गम्भीर सागर में दोनों साम्प्रदायिक धाराएँ विलीन हो गयीं। यही नहीं नास्तिकता की बद्धमूल एवं प्रबलतम धारा भी अपनी पृथक् स्वतंत्र सत्ता खो बैठी। देखिये उनकी इस महनीय एवं विशद मानवीय विचारधारा की पृष्ठभूमि में एक साखी–

हिन्दी का तो गुरु हूँ, मुसलमान का पीर।
काफिर का चौरंग हूँ, पलटूदास फकीर।।

उनके इन व्यापक मानवीय सिद्धांतों एवं आदर्शों का अवध के तत्कालीन नबाव सुजाउद्दौला के अन्तःकरण पर गहरा प्रभाव पड़ा। चौदह गाँवों की जागीर का अधिकार ताम्रपत्र पर खुदवाकर नबाव उन्हें भेंट करने आये, परन्तु निष्काम योगी पलटू साहब ने उन्हें निम्नांकित पद सुना दिया–

आकाश पाताल मृत्यु लोक चौदहों भुवन।
दास पलटू कहै वहाँ होवे अमल मेरा।
रामचन्द्र की चाकरी कबहूँ न आये टूट।
रोटी कपड़ा ना घटै, पलटूदास अटूट

बाबा पलटूदास को यह राज्य परमपिता ने दिया था। उनके इस राज्य की निःसीम सीमा में अवध के नवाब के राज्य की कौन कहे, समस्त सीमाएँ भी विलीन हो गईं। उनके हृदय गगन का विस्तार नवसमाज–दर्शन के एकत्रीकरण के लिए व्याकुल हो उठा और उन्होंने अपनी व्यापक शाश्वत मान्यता की घोषणा निःशंक कर दी।

हिन्दू पूजे देवहरा मुसलमान मसजीद।
पलटू पूजे आत्मा जो खावे दीद–अदीद।।

लेकिन ऐसे सत्य के उपासक को साम्प्रदायिक उपेक्षा ही नहीं, आक्रोश तथा प्रकोप का भाजन बनना पड़ा। दुष्टों ने उनको जला देने के ख्याल से अग्नि के हवाले कर फूँक दिया, लेकिन वे ईश्वरीय चमत्कार या अपनी यौगिक क्रिया द्वारा जगन्नाथपुरी में प्रकट हो गये और निरन्तर बहुत दिनों तक रह गये। वहाँ भी उनका प्रभाव व्यापक हो गया। ईसामसीह के समान उनके पुनर्जीवित होने के संबंध में यह साखी द्रष्टव्य है–

पलटूदास को जरत निकारों, दुष्टन दोन्ही आग लगाई।
सात सै कोस निमिष में आना, पुरुषोत्तमपुर लै पैठाई।
पलटू दोसर हरि आयु रे रघुवीर।
उड़ीसा पगटे आय के अवध में जरी शरीर ।।

इधर अयोध्यावासियों को इस बात का पता चला कि पलटू साहब जीवित हैं, तो उन्हें बुलाने वे लोग तीन माह में उड़ीसा पहुँचे, जबकि श्री पलटूसाहब निमिषमात्र में वापस अयोध्या आ गये, जिससे आसपास के लोग उनके पवित्र दर्शन तथा उपदेश पाकर कृतार्थ हुए।

जगन्नाथपुरी से लौटने पर उन्होंने एक विशाल भोज दिया, जिसमें बिना भेदभाव के अयोध्या की परिधि के अन्तर्गत जनसाधारण एवं समस्त सन्त, महन्थ आमंत्रित किये गये, किन्तु साम्प्रदायिक विद्वेष एवं घृणा के कारण सन्तों–महन्थों ने उनका पूर्णरूप से एकमत होकर विरोध किया। यह विरोध या बहिष्कार उनके निरन्तर फैलते प्रभाव से उत्पन्न ईर्ष्या के कारण था। पलटू साहब ने इसकी परवाह नहीं की। जनसाधारण को इसकी जानकारी मिली और वे लोग उनके भोज में आये–

मालपुआ चारिउ वरन बाँध लेत कुछ खात।
सब वैरागी बटुरि के पलटुहिं कियो अजात।।
लोक लाज सब छोड़के, कर लीजै अपना काम ।।
जगत् हँसे तो हँसन दे, पलटू हँसै न राम ।।

और एक चमत्कारी एवं विनम्र संत का यश बढ़ता रहा। अब विरोधी भी उनके शिष्य और समर्थक बन गये। सन्त पलटूदास का पर्यायवसान विक्रम सम्वत् १८७८ में हुआ। इस संबंध में उनके परमशिष्य हुलास साहब का दोहा द्रष्टव्य है–

आश्विन सुदी द्वादशी तिथि, सोमवार घड़ी चार।
पलटू त्यागा देह को विनती बारम्बार ।।

अर्थात् आश्विन शुक्ल द्वादशी सोमवार को प्रातः चार घड़ी दिन चढ़ते उन्होंने गोलोक के लिए प्राणायाम के द्वारा इच्छानुसार इस नश्वर तन का त्याग कर दिया और ब्रह्मलीन हो गये।

आज पलटू साहब नहीं है, फिर भी उनकी समाधि मंदिर, श्री पलटू साहब का अखाड़ा अयोध्या में प्रतिष्ठित है और उनके यश का गान कर रहा है, जो धार्मिक एवं आध्यात्मिक व्यक्तियों के लिए एक आकर्षण का केन्द्र है।

वे एक प्रतिभाशाली, क्रान्तिकारी एवं समाज–सुधारक सन्त थे। विविधता में एकता, विषमता में समता, उनकी विशेषताएँ थीं। वे सत्य–अहिंसा के परम पुजारी, नैतिकता तथा धार्मिकता के प्रबल समर्थक, साधनात्मक रहस्यवाद के अनुवर्ती, सामाजिक और मानवीय चेतना के व्याख्याता, उर्दू–फारसी तथा हिन्दी भाषा के जानकार, दार्शनिक सन्त कवि थे। हिन्दी साहित्य के इतिहास में वे देदीप्यमान सूर्य की भाँति प्रकाशमान हैं।

वे कबीर की परम्परा में प्रतिष्ठित उस निर्गुण संप्रदाय के संत थे, जो मध्यकालीन भारत में एक आध्यात्मिक आन्दोलन के रूप में उभरकर आया था और जिसका उद्देश्य उस अज्ञान और अंध–परंपरा का निराकरण करना था, जिसने एक ओर तो मुसलमानी कट्टर धर्मान्धता तथा दूसरी ओर शुद्रों तथा दलितों के ऊपर सामाजिक अनाचार–अत्याचार को पनपने का मौका दिया था। वस्तुतः उस समय साम्प्रदायिक एकता एवं सामाजिक न्याय भावना के मार्ग में ये ही दो बातें बाधा–स्वरूप उपस्थित थीं। सूफीमत और उपासनापरक वेदान्त दोनों का सम्मिलित उद्घोष कबीर के मुख से हुआ और बताया गया कि परमात्मा एक और अमूर्त है। बाह्य कर्मकाण्डों के द्वारा उसकी प्राप्ति असंभव है। उस परमात्मा की सत्ता सम्पूर्ण सचराचर जगत् में परिव्याप्त है। (देखिये ईशोपनिषद्)। उसे यत्र–तत्र तीर्थों, मंदिरों, मस्जिदों में ढूँढ़ना मूढ़ता है। वे तो प्रत्येक के हृदय मंदिर में ही विराजमान हैं। इस नूतन विचारधारा में हिन्दू और मुसलमानों को भड़कानेवाली कोई ऐसी–वैसी बात न थी। कबीर द्वारा स्वीकृत हिन्दू अद्वैतवाद मुसलमानी एकेश्वरवाद से बहुत सूक्ष्म था, परन्तु दोनों में तत्त्वतः कोई स्थूल विरोध दृष्टिगत न होता था। सम्भवतः दोनों के सम्मिलन की भूमि का मूलाधार यही था। यह बताया गया कि उस
जगत् पिता परमात्मा की दृष्टि में सभी धर्मावलम्बी तथा धर्म बराबर है। आत्मा और परमात्मा की एकता अनुभव करनेवाले वेदान्ती के लिए वर्णभेद सिर्फ मिथ्या पर आश्रित था। अतः तोड–फोड़ तथा रक्तपात करना कोरी नासमझी है।

इस आन्दोलन का नायकत्व कबीर के बाद अनेकानेक संतों ने समय–समय पर अपने हाथों में लिया, जिसमें महात्मा पलटूदास का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है। इनके द्वारा लिखित 'रामकुंडलिया' और 'आत्मकर्म' ये ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। इनके 'अरिल्ल' और 'कुंडलिया' बहुत सुंदर बन पड़े हैं जिनमें भावों की गहनता और जीवन दर्शन की गहराई स्पष्टरूपेण परिलक्षित होती है। इनकी वाणियों में सत्य का निरूपण, शिव का प्रतिपादन, तो यथेष्ट हुआ है, किन्तु बाह्य सौंदर्य का अभाव है। हाँ, विषय का सौंदर्य इनके पदों में अवश्य उपलब्ध है।

आगरा विश्वविद्यालय में 'संतकवि पलटूदास और निर्गुण संप्रदाय' तथा 'संत पलटूदास और पलटूपंथ' शीर्षक से दो शोध–प्रबंध प्रस्तुत किये जा चुके हैं और शोधार्थियों को उपाधियाँ भी मिल चुकी हैं। लखनऊ विश्वविद्यालय में भी एक शोध–प्रबंध प्रस्तुत किया जा चुका है, जिसका शीर्षक था–'संत पलटूदास और उनका संप्रदाय'। एक और शोध–प्रबंध 'संतकवि पलटूदास और संत सम्प्रदाय' भी किसी विश्वविद्यालय में डिग्री के लिए पेश किया गया था। ये चारों शोध–कार्य उच्च कोटि के हुए हैं और सम्बद्ध विद्वानों को डॉक्टरेट से सम्मानित किया जा चुका है।

पलटू साहब सच्चे अर्थों में पहुँचे हुए संत थे। संत कबीर की यह वाणी उनपर अक्षरशः लागू होती है–

संतान छोड़े सन्तई कोटिक मिले असंत।
मलय भुवंगहि बेधिया, सीतलता न तजंत।।

अर्थात् संत अपने सदगुणों का परित्याग लाख विरोध के बावजूद नहीं करते। चन्दन–वृक्ष में सर्प लिपटे रहते हैं, पर चंदन अपनी शीतलता और सुगंध गुण नहीं छोड़ते। बाबा पलटू दास लिखते हैं–

सीतल चंदन चंद्रमा, तैसे सीतल संत।।
तैसे सीतल संत, जगत् की ताप बुझावै।
जो कोई आवे जर मधुर मुख वचन सुनावै।।
धीरज सील सुभाव, छिपा ना जात बखानी।
कोमल अति यह बैन, बज्र को करते पानी।।
रहन चलन मुसकान, ज्ञान को सुगंध लगावै।
तीन ताप मिट जायँ, संत के दर्शन पावै।।
पलटू ज्वाला उदर की, रहै न मिटे तुरंत।
सीतल चंदन चंद्रमा, तैसे सीतल संत।।

कहने का तात्पर्य यह है कि संतों की शरण में जाने पर संसार का सारा संताप–पाप मिट जाता है। दैहिक, दैविक,भौतिक– तीनों तापों से छुटकारा मिल जाता है। अपराधी को भी संत क्षमा और सान्त्वना प्रदान करते हैं। संत और नाम की परस्पर प्रीति का सरस और सुन्दर वर्णन उनकी साखी में देखें–

संतन के सिरताज हैं, सोई संत होइ जाय।।
सोइ संत होइ जाय, रहे जो ऐसी रहनी।
मुख से बोले साँच, करै कुछ उज्ज्वल करनी।।
एक भरोसा करै, नहीं काहू सो माँगे।
मन में करै संतोष, तनिक ना कबहू लागे ।।
भली–बुरी कोइ कहै, ताहि सुन नहि मन माखै।
आठ पहर दिन–रात, नाम की चरचा राखै।।
पलटू रहे गरीब होय, भूखे को दे खाय ।
संतन के सिरताज हैं, सोई संत होइ जाय।।

वे आगे लिखते हैं–

संत सनेही नाम है, नाम सनेही संत।।

नाम सनेही संत, नाम को वही मिलावै।
वे हैं वाकिफगार, मिलन की राह बतावै।।
जप–तप–तीरथ–बरत, करै बहुतेरा कोई।
बिना बसीला संत, नाम से भेंट न होई ।।
कोटिक करे उपाय, भटक सगरौ से आवै।
दुवारै जाय नाम को, घर तब लावै।।
पलटू यह है प्रान पर, आदि सेती और संत।
संत सनेही नाम है, नाम सनेही संत।।

जिस प्रकार दीपक जलाने से घर का कोना–कोना जगमगाने लगता है, उसी प्रकार जब नाम का प्रकाश अन्तस्थल में उमड़ता है, तो सारा जीवन तेजोमय हो जाता है–

दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार।।
महल भया उजियार, नाम का तेज बिराजा।
सब्द किया परकास, मानसर ऊपर छाजा।।
दसों दिसा भई सुद्ध बुद्ध भई निर्मल साची ।
छुटी कुमति की गाँठ, सुमति परगट होय नाची।।
होत छतीसो राग, दाग निर्गिन का छूटा।
पूरन प्रगटै भाग, करम का कलसा फूटा।
पलटू अँधियारी मिटी, बाती दीन्हीं टार।
दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार ।।

(महल–अंतस्थल, सब्द–शब्दब्रह्म, मानसर–शून्य में स्थित अमृतकुंड, पूरन प्रगटै भाग भाग्योदय हुआ, करम का कलसा फूटा–दुष्कर्मों का अत हुआ। अंधियारी–अज्ञान का अन्धकार।निष्काम कर्मयोगी संत पलटूदास अपने शुभ कर्मों का श्रेय ईश्वर को देते थे–

देत लेते हैं आपुही, पलटू पलटू सोर।।
पलटू पलटू सोर, राम की ऐसी इच्छा।
कौड़ी घर में नाहिं, आपु मैं मागौं भिच्छा ।।
राई परबत करै, करै परबत को राई।
अदना के सिर छत्र, पैज की करै बड़ाई।।
लीला अगम अपार, सकल घर अंतरजामी।
खाँहि खिलावहिं राम, देहि हमको बदनामी।।

(आपु–परमात्मा, राम परब्रह्म, पैज–प्रतिज्ञा, भक्तों की सहायता करने के लिए भगवान प्रतिज्ञाब) हैं।)

नाम की महिमा अनंत है। जपयोग सर्वश्रेष्ठ और सर्वसुगम योग है। सच्चे मन से तन्मय होकर नाम–जप करने वाला जीवन में अनंत ऐश्वर्यों को भोगकर अंत में मोक्ष प्राप्त करता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है–'सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव वारिधि गोपद इव तरहीं।।' –मानस 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'–गीता १०/२५ सन्त पलटू कहते हैं–

नाम नाम सब कहते हैं, नाम न पाया कोय।
नाम न पाया कोय, नाम की गति है न्यारी।
नहीं सकस को मिलै, जिन्होंने आशा मारी।।
हौं को करे खमोस, होस न तन को राखै।
गगन गुफा के बीच, पियाला प्रेम का चाखै।।
बिसरे भूख–पियास, जाय मनरंग में लागै।
पाँच–पचीस रहे बार, संग में सोऊ भागै।।
आपुदू रहे अकेल, बोले बहु मीठी बानी।।
सुनतै अब वह बनै, कहा में कहाँ बखानी।।
पलटू गुरु परताप ते, रहै जगत् में सोय।
नाम नाम सब कहते हैं, नाम न पाया कोय।।

(सकस–सख्स, व्यक्ति; आशा मारी–आशा तृष्णा का परित्याग। हौं–अहम् में।खमोस–खामोश यानी अहंकारहीन हो जाना।गगनगुफा–पिण्ड का सर्वोच्च स्थान, सत्यलोक, पाँच– पचीस अर्थात् तीस (पंचमहाभूत पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, आकाश इनकी सूक्ष्म तन्मात्राएँ–गंध, रूप, रस, स्पर्श, शब्द व तीन सूक्ष्म सृष्टि के अंग–मन, बुद्धि, अहंकार; पंच ज्ञानेन्द्रियाँ–आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा; कर्मेन्द्रियाँ–हाथ, पाँव, मुँह, गुदा, उपस्थ; सात विकार–इच्छा, द्वेष, सुख, दुख, संघात (शरीर), चेतना, धृति।)

पंचमहाभूत और मन, बुद्धि, अहंकार को भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी अपरा प्रकृति कहा है (गीता–7/4)। पराप्रकृति–जीवात्मा है, जो श्रेष्ठ, चेतन और अपरिवर्तनशील है। 'ईश्वर अंश जीव अविनासी' (रामचरितमानस)। अपराप्रकृति–निकृष्ट, जड़ और परिवर्तनशील है। गीता अध्याय 13 में इसका पर्याप्त वर्णन है।

संत पलटू के कहने का आशय यह है कि उत्पत्ति– विनाशशील पदार्थ क्षेत्र (शरीर) है और क्षेत्रज्ञ प्रकृतिस्थ पुरुष है। क्षेत्रज्ञ क्षेत्र के साथ भ्रमवश अपना है। संबंध मानता है, इसी से इसका बार–बार जन्म होता है। यदि यह शरीर के साथ अपना संबंध नहीं मानता, तो इसका पुनर्जन्म नहीं होता।आत्मज्ञान मन
बंधन को काटने के लिए अनिवार्य है।(गीता अध्याय–13)

दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि नाशवान शरीरादि के साथ अज्ञानतावश तादात्म्य स्थापित कर लेने से स्वयं जीवात्मा भी अपने को जन्मने–मरनेवाला मान लेता है। जीवरूप पराप्रकृति ने ही इस अपरा प्रकृति को धारण कर रखा है। यदि धारण न करें, तो बंधन का प्रश्न ही नहीं है। अगर जीव संसार की स्वतंत्र सत्ता न मानकर केवल भगवत्स्वरूप हो मानें, तो उसका जीवन–मरण का चक्र अवश्य मिट जायगा।इससे यह सिद्ध हो जाता है कि संत कबीर की परंपरा के अन्य महान् संतों की तरह पलटूदास भी अद्वैती और विवर्तवादी हैं।विवर्तवाद की प्रमुख मान्यता है–'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या।'

निर्गुण संतों के आधार उपनिषद् है। इनके सिद्धांतों और उपदेशों पर उपनिषदों की छाप स्पष्ट है।कबीरादि सन्तों के सिद्धांतों का सार यही है कि सभी प्राणियों के हृदय में परमात्मा का वास है। उसे बाहर न ढूँढ़कर भीतर ही देखो।'आत्मा ही परमात्मा है।'(गीता 18/61)

ठीक ही कहा गया है कि भारत में सुधार आन्दोलनों का आरम्भ उपनिषदों के गहन अध्ययन का परिणाम है।उपनिषदों की अध्यात्म–विद्या को वेदान्त कहा जाता है। भारतीय वेदान्ती के दर्शन का प्रवर्तन उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र को लेकर होता है। नवीन सिद्धान्तों के प्रवर्तक आचार्यों ने इन्हीं तीनों की व्याख्या करते हुए अपने सिद्धांतों का प्रचार किया है। इसलिए इन्हें 'प्रस्थानत्रय' कहते हैं; परन्तु तीनों को अलग–अलग नहीं समझना चाहिए। वस्तुतः ये एक हैं।

ब्रह्मसूत्र में उपनिषदों की उक्तियों का अनुक्रमपूर्वक सूत्ररूप में संग्रहमात्र है और भगवद्गीता उपनिषदों का सार मात्र है।गीता उपनिषद् मानी जाती है। अद्वैत सिद्धांत के प्रवर्तक आद्य शंकराचार्य, विशिष्टाद्वैत के प्रवर्तक रामानुजाचार्य, भेदाभेद के प्रवर्तक निम्बार्काचार्य, शुद्धाद्वैत के प्रवर्तक वल्लभाचार्य–इन सबके उपर्युक्त प्रस्थानत्रय में से कुछ पर अथवा तीनों पर अवश्य भाष्य मिलते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्यकाल के धार्मिक आन्दोलनों की पुष्टि में जितनी दार्शनिक पद्धतियों का प्रवर्तन हुआ, सबका आरंभ उपनिषदों के गहरे अध्ययन से हुआ है।

संत पलटू दास के पदों में 'समत्व' विद्यमान है।'समत्वं योग उच्यते' (गीता 2/48)। जब जगत् के सारे खेल का केन्द्र एकमात्र परमात्मा है, तो हार–जीत दोनों सुहावने हैं–

जो मैं हारौंराम की, जो जीतौं तौं राम।
जो जीतौं तो राम, राम ते तन–मन लावौ।
खेलौं ऐसो खेल, लोक की लाज बचावौ।।

पलटू बाजी लाइहौ, दोऊ विधि से राम।
जो मैं हारौं राम की, जो जीतौं तौं राम ।।

हार–जीत दोनों राम की है। ऐसी दशा में चिन्ता किस बात की? दोनों प्रकार की बाजी हमारे ही पक्ष में है।

सन्त पलटू के लिए सत्संग दीवाली के समान है, क्योंकि इसी के द्वारा अंतर की अमावस्या का अंत होता है। सत्संग से ज्ञान का प्रभूत प्रकाश प्राप्त होता है और माया का आवरण दूर हो जाता है। सूरज और चाँद का उदय हो जाता है। अँधियाली भाग जाती है–

फिर–फिर नहीं दिवारी, दियना लीजै बार।
दियना लीजै बार, महल में है उजियारा।।
उदय होय ससि भान, अमावस मिटै अँधियारा।।
पलटू सत्संगत मिला, खेलि लेहु दिन चार।
फिर–फिर नहीं दिवारी, दियना लीजै बार।।

प्रभु तो सर्वव्याप्त हैं। परन्तु वह इन बाह्य नेत्रों से दिखता नहीं। उसे देखने के लिए ज्ञान–चक्षु, दिव्य–चक्षु चाहिए। वह परमात्मा सबके हृदय में है, यह विश्वास करो। उसके वरदहस्त की छत्रछाया सबके माथे पर है–

नजर महैं सबकी पड़ै, कोऊ देखै नाहिं।
कोऊ देखै नाहिं, सीस वै सबके छाजैं।
पूरन ब्रह्म अखण्ड, सकल घट आप विराजै।
पलटू खाली कहूँ, नहिं परगट है जग माँहिं।
नजर महैं सबकी पड़ै, कोऊ देखै नाहिं।।

जिस प्रकार एक पतिव्रता स्त्री सास–ससुर, ननद– देवर–भैंसुर आदि घर के सब लोगों की सेवा करती है और उन्हें प्रसन्न रखने को चेष्टा करती है; परन्तु सोती है अपने प्रियतम के पास। उसी प्रकार सच्चा भक्त या साधक संसार के सभी लोगों के साथ प्रेम–भाव रखता है और सबका सम्मान करता है; किन्तु उसके प्राणों की क्रीड़ा एकमात्र प्रभु के साथ होती है। अगर वह ऐसा नहीं करे, तो उसे व्यभिचार का दोष अवश्य लगेगा। 'अव्यभिचारी भक्तियोग' का वर्णन भगवान ने गीता के अध्याय 14 श्लोक 26 में किया है। संत पलटूदास की वाणी देखें–

पतिवरता के लच्छन, सबसे रहै अधीन।
सबसे रहै अधीन, टहल वह सबकी करती।
सास सुसर और भसुर, ननद देवर से डरती।।
सबका पोषन करै, समन की सेज बिछाये।
सबको लेय सुताय, पास तब पियके जावै।।
सूतै पिय के साथ, समन को राखे राजी।
ऐसा भक्त जो होय, ताहि की जीती बाजी।।
पलटू बोलै मीठे बचन, भजन में है लौलीन।
पतिवरता के लच्छन, सबसे रहै अधीन ।।

सच्चे भक्त की पहचान मीठी वाणी और भजन में तल्लीनता है। कबीर ने अपने को 'राम की बहुरिया' माना है। पलटूदास इसी परंपरा में है। जब जीवात्मा परमात्मा के रंग में रंग जाती है, तब उसे अपनी सुधि नहीं रहती। ऐसा संयोग तो सद्गुरु के कृपा प्रसाद से मिलता है। पलटू फिर कहते हैं–

रैन दिवस बेहोस, पिया के रंग में राती।
तन की सुधि है नहीं, पिया संग बोलन जाती।।
पलटू गुरु प्रसाद ते किया पिया को हाथ।
सोई सती सराहिये, जरै पिया के साथ।।

निर्भरा भक्ति में शरणागति ही एकमात्र आश्रय और आधार है। भक्तों और संतों ने ईश्वर को प्राप्त के लिए इसे सदैव अपनाया है। भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता में कहा है–

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' (गीता 18/66)। संत पलटूदास का यही समर्पण योग है–

करम–धरम सब छौड़िकै, पड़े सरन में जाय।।
पड़े सरन में जाय, तजी बल–बुधि चतुराई।
जप–तप–नेम अचार, नहीं जानों कछु भाई।।
पलटू मैं जियतै मुवा, नाम भरोसा पाय।
करम–धरम सब छौड़िकै, पड़े सरन में जाय ।।

जब प्रभु की शरण में चले गये और सब कुछ उन पर छोड़ दिया, तब चित्त बिल्कुल निश्चिंत हो जाता है और सुख की नींद आती है। 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' –गीता। सन्त पलटू दास जी कहते हैं–

पलटू सोवै मगन में, साहिब चौकीदार।
साहिब चौकीदार, मगन होई सोवन लागे।
दूनों पाँव पसारि, देखि के दुश्मन भागे।।
जाके सिर पर राम, ताहि को वार न बाँके।
गाफिल में मैं रहौ, आपुनी आपुइ ताके।।
हमको नाहीं सोच, सोच सब उनको भारी।
छिनभरि परै न भोर, लेत हैं खबर हमारी।।
लाज तजा जिन राम पर, डारि दिया फिर भार।
पलटू सोवै मगन में, साहिब चौकीदार।।

सन्त पलटूदास के अनुसार संतों को सदा विनम्र होकर रहना चाहिए। दीनता ही उनका आभूषण है। जब प्रियतम का संग प्राप्त हो जाता है, तब संत इस संसार में रहकर भी उससे पृथक रहते हैं। क्रोध, दंभ, मान–बड़ाई से संत दूर रहते हैं। संत पलटू कहते हैं कि संतों को सबके सामने नतमस्तक होकर रहना चाहिए। अगर कोई गालियाँ भी दे, तो ध्यान मत दो, उसे क्षमा कर दो, चुप रहो। सबसे प्रिय बोलो। उनकी तारीफ करो, गुणों को परखो, अवगुणों पर ध्यान न दो। अपने को अत्यन्त छोटा मानों। किसी सज्जन से मुलाकात होने पर पहले तुम उन्हें प्रणाम करो, उन्हें अपने सर–आँखों पर रखो। वे फिर कहते हैं कि वही आत्मा सही अर्थों में सुहागिनी है, जिसके मस्तक पर प्रेमरूपी हीरे का आभूषण दमक रहा है और जो प्रियतम को प्यारी है।

मन मिहीन करि लीजिए, जब पिउ लागै हाथ।
जब पिउ लागै हाथ, नीच है सबसे रहना।
पच्छा–पच्छी त्यागि, ऊँच बानी नहिं कहना।।
मान–बड़ाई खो, खाक में जीते मिलना।
गारी कोऊ देइ जाय, छिमा करि चुपके रहना।।
सबको करै तारीफ, आपको छोटा जानै।
पहिले हाथ उठाइय, सीस पर सबको आनै।।।
पलट सोई सुहागिनी, हीरा झलकै माथ।
मन मिहीन कर लीजिए, जब पिउ लागै हाथ।।

भगवान कृष्ण ने गीता के तेरहवें अध्याय के सातवें श्लोक में अमानित्व, अंदभित्व शांति, आर्जव आदि संतों और ज्ञानियों के लक्षण बताये हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा पलटू दास एक निर्गुणोपासक थे। उनकी वाणियाँ जनसाधारण को आसानी से समझ में आनेवाली थीं। वे एक संत एवं एक योगी ही नहीं, वरन् समाज–सुधारक भी थे। आज हम जिस युग में रह रहे हैं, पलटूदास जैसे संतों की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गई है। हम उनके संदेशों को आत्मसात करके तथा उनका प्रचार कर समाज, देश और विश्व के नव–निर्माण में योगदान दे सकते हैं। उनका समाजबोधक पद देखें–

जो हिन्दू सो मुसलमान में, सब मिली करहु विचारा हो।
पलटू दास दोउ के बीचै, साहेब एक हमारा हो।।

तथा एक और साखी–

चार वरन को मेटि के, भक्ति चलाया मूल।
गुरू–गोविन्द के बाग में, पलटू फूला फूल।।

आलेख

विद्यापति के काव्य में सामाजिक चेतना

डॉ. देवेन्द्र नाथ साह
कुल सचिव–विक्रमशिला विश्वविद्यालय बाराहाट
पो. ईशीपुर, भागलपुर
मो.– 09931291158

मिथिलांचल में मैथिल कोकिल के नाम से प्रसिद्ध विद्यापति अपने युग के लोकप्रिय कवि थे। वे ठाकुर उपनाम से जाने जाते थे। ठाकुर शब्द से संकेत मिलता है कि विद्यापति अचल सम्पत्ति के मालिक थे। उनका जन्म दरभंगा से 25 किलोमीटर उत्तर–पश्चिम स्थित बिसफी ग्राम में हुआ था। बिसफी ग्राम में इनके पूर्वज पाँच पीढ़ियों से अधिक समय से थे। इनके पूर्वज विद्वान परिवार से आते थे, जो सम्पूर्ण मिथिलांचल में शास्त्रीय गायन के लिए प्रसिद्ध थे।

विद्यापति राजा शिव सिंह के दरबारी कवि थे। सन् 1400 ई0 में विद्यापति को ताम्रपत्र पर अंकित 'अभिनव जयदेव' की उपाधि और बिसफी ग्राम राजा शिव सिंह से उपहार में मिला था।

महाकवि विद्यापति संस्कृत, अपभ्रंश और लोक भाषा मैथिली के प्रकाण्ड पंडित थे। इन्हीं तीनों भाषाओं में कवि विद्यापति की रचनाएँ उपलब्ध हैं। संस्कृत में 'पुरुष परीक्षा', 'शैव सर्वस्व सार', 'शैव सर्वस्व सार प्रमाण', 'भूत पुराण संग्रह', 'भू– परिक्रमा', 'लिखनावली', 'गंगा वाक्यावली', 'दान वाक्यावली', 'विभागसार', 'गया पत्तलक', 'दुर्गाभक्ति तरंगनी' और 'वर्ष कृत्य' ग्रंथ प्रसिद्ध है। अपभ्रंश की रचनाओं में 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। मैथिली में 'विद्यापति पदावली' सर्वोपरि ग्रंथ है। विद्यापति पदावली फुटकर कविताओं का संग्रह है।

दरबारी कवि होने के नाते विद्यापति ने अपने आश्रयदाता को लक्ष्य बनाकर काव्य की रचना की है। समाज में व्याप्त रुढ़ियों और मान्यताओं के विरुद्ध कबीर की तरह अपना रोष व्यक्त नहीं किया है, अपितु तुलसी के समान समाज के कल्याण को अपने काव्य का आदर्श बनाया है। विद्यापति ने जन–सुलभ भाषा में सामाजिक जीवन को अपनी रचनाओं में ढाला है, तभी तो उनकी रचनाएँ जन–साधारण में व्याप्त है। इनकी रचनाएँ समाज के सभी पक्षों को उजागर करती हुई सामाजिक चेतना से प्रतिबिंबित है।

विरहणी नायिका के संबंध में जो उनके उद्‌गार हैं, वे अद्‌भुत हैं। विरहणी नायिका विरह में आत्महत्या नहीं करती है। जब वह अत्यधिक व्याकुल हो जाती है, तो विरहणी अपनी सखी से विनती करती है–

''सून सेज मोहि सालेए रे पिया बिनु घर मोए आज।
विनती करों सह लालनि रे! मोहि देह अगिहर साज।।''

कवि उसकी व्याकुलता भाँप कर किसी अनिष्ट अनहोनी से पहले ही उसकी सखी से या स्वयं अपने मुख से आश्वासन के दो शब्द कहकर नायिका को आशा बँधा देते हैं। यथा–

''विद्यापति कवि गाओल रे, आई मिल वे प्रिय तोरा।''

इतना ही नहीं, आगे विरहणी वर्णन में विद्यापति कहते हैं–

''सखि हे हमर दुखक नहि ओर,
दूभर बादर, माह भादर, सून मंदिर मोर, झंपिघन गरजंति संतत, भुवन भरि बरसंतिया। कांत पाहुन काम दारुन, सघन खरसट हंतिया।
कुलिस कत सत पात, मुदित मयूर नाचत भातिया।
मत्त दादुर डाक डादुक पफाटि जायत छतिया।
तिमिर दिग भरि घोर जामिनी अधिर बिजुरिक पाँतिया।
विद्यापति कह केना गमाओ हरि विना दिन रातिया।''

विद्यापति की नायिका सामान्य श्रेणी की है, जिसके चारों ओर परिवार और समाज है। उसकी चौकसी सास–ननद करती है। समाज की मान्यताएँ और कुल की मर्यादा उसके अवरोधक तत्त्व हैं। ऐसी अवस्था में विद्यापति ने अपनी भावना को सामान्य नारी को लक्ष्य कर लिपिबद्ध किया है। लगता है विद्यापति ने विरह के एक–एक पल को बहुत ही करीब से देखा है। तभी तो वे कहते हैं–

''माघ मास घन पड़ए तुसार।/ झिलमिल कुचुआँ उनत घन हार।
पुनमति सुतलि पिअत कोर। /विधि बस दैव वाम भेल मोर।

प्रकृति वर्णन में भी कवि सामाजिक चेतना को दर्शाने में पीछे नहीं है। प्रकृति वर्णन में कई जगहों पर मानवीकरण पद्धति अपनाई गयी है। सांग रूपक के सहारे प्रकृति का वर्णन विभिन्न रूपों में किया है। बसंत वर्णन में बालक, तरुण, दूल्हाराजा आदि को व्यवहार किया है। कहीं–कहीं आगन्तुकों को आसन देना, मांगलिक कलश की स्थापना करना, वस्त्र आदि चढ़ाना सभी की झलक मिलती है। यथा–

''अभिनव पल्लव बइसक देल।, धवल कमल फूल पुरहल भेल।।
करू मकरंद मंदाकिनी पान।, अरुण अशोक दीप बहु आन।।
माह रे आज दिवस पुनुमंत।, करिअ चुमावन राय बसंत।।''

कवि विद्यापति ने समाज की परिस्थितियों और परिवेशों का वर्णन यथार्थ रूप में किया है। समाज में प्रचलित बाल–विवाह, बेमेल–विवाह आदि कुरीतियों पर तीखा प्रहार किया है। बालक पति पाकर तरुणी के भाग ही फूट जाते हैं। इस मनोदशा का वर्णन कवि विद्यापति ने बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है–

''पिया मोर बालकवा हम तरुणी। कौन तप चुकलौंह भेलौंह जननी।
पहरि लेल सखि दछिन के चीर। पिया के देख तो मोर दग्ध सरीर।
पिया के ली गोद कै चलित बजार। हटिया के लोग पूछे के लागु तोहार।''

इस परिस्थिति में यौवना नायिका अपने बाप से कहती है, आपने इस दूधमुँहें बच्चे के साथ मेरी शादी कर दी है। अब आप दूध पीने के लिये अपने जमाई को एक गाय तो भिजवा दीजिए, ताकि आपका जमाई पुष्ट हो जाय।

कुटनी नारी का भी विद्यापति ने यथार्थ वर्णन किया है। कुटनी नारी सिर्फ दूसरी औरतों को ही नहीं लोभ में फँसाती थी, बल्कि स्वयं भी उस नारकीय जीवन जीने को विवश होती थी। ऐसी नारियाँ सम्पूर्ण जीवन और वृद्धावस्था में निराशा से भर जाती है। कवि विद्यापति ने कुटनी की व्यथा को निम्न प्रकार व्यक्त किया है–

''खने खस घोघट विघट समाज, खने–खन अब हकारिल लाज।''

इतना ही नहीं, कुटनी के पश्चाताप और आत्मग्लानि को देखकर कवि विद्यापति सहानुभूति देने में भी पीछे नहीं रहते हैं–

''परमाद धिया मोर भेल। आहे यौवन कत चल गेल।''

विद्यापति के काव्य में व्यंग्य की भी भरमार है। इस मामले में कवि विद्यापति ने कृष्ण को राधा के सामने सामान्य गरीब ग्वाला के रूप में चित्रित किया है और राधा के मुँह से व्यंग्य वाण की झड़ी लगवा दी हैं। यथा–

''कि कहब आज कि कौतुक भेलि। अपदहिं कान्हक गौरब गेलि।।
आयल वैसल पाँव पोआर। सेजक कहिनी पुछए विचार ।।
ओछाओन खण्डतरि पलिया चाह। अओर कहब कत अहिरिनि नाह।।''

विद्यापति की भाषा में ग्राम्य और लोक–प्रसूत प्रयोग मिलते हैं। कवि विद्यापति ने लोक जीवन के कहावतों और मुहावरों का प्रयोग बहुत ही सटीक ढंग से किया है–

''सखि हे बूझल कान्त कान्ह गोआर। पितरक टाँड़ काज दुहू कओन लहु
उफपर चकमक सार।''

इस प्रकार विद्यापति के गीतों में प्रेम–विरह, अंध– विश्वास, भूत–प्रेत, टोना–टोटका आदि अनेक संदर्भों का उल्लेख मिलता है। साथ ही समाज के अस्वस्थ और अनैतिक स्वरूप की भी झाँकी मिलती है। विद्यापति की भाषा ग्रामीण और लोक जीवन से अभिसिंचित है। इससे पता चलता है कि विद्यापति की पैठ लोक जीवन में बहुत ही गहरी थी। अंततः कहा जा सकता है कि कवि विद्यापति का काव्य समाज के यथार्थ और सजीव चित्रण से भरा पड़ा है।

शोध आलेख

सूफी कवि और एकेश्वरवाद, अद्वैतवाद एवं सर्ववाद

वसीम राजा
प्राध्यापक, एस.के.आर कॉलेज
बरबीघा, शेखपुरा
मो.–8409908332

सूफी संत भक्ति काल के निर्गुणोपासक प्रेमाश्रय कवि हैं।
हिन्दी साहित्य के स्वर्णिम काल में इनकी अलग छवि है।

एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद एक नहीं हैं, दोनों में अंतर है। एकेश्वरवाद स्थूल देववाद है, जबकि अद्वैतवाद का संबंध सूक्ष्म ब्रह्मवाद से है। अनेक देवी–देवताओं की कल्पना करना अथवा एक ही परम सत्ता को मानना–एक ही बात है, क्योंकि दोनों में जीव से भिन्न सत्ता की भावना होती है। जबकि अद्वैतवाद में जीव और ईश्वर के बीच अभेद स्थापित किया जाता है। यह गूढ़ दार्शनिक चिंतन के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ है, इसलिए यह एक ऐसा तत्त्व है, जो सूक्ष्म अंतर्दृष्टि से प्राप्त होता है। सूफी आदि अद्वैतवादी भक्त सम्प्रदाय इसको अनुभूति मार्ग में लेकर चले। एकेश्वरवाद का अर्थ है कि एक सर्वशक्तिमान ईश्वर है, जो सृष्टि की रचना करता है, उसका पालन करता है और वही उसका विनाश करता है। जबकि अद्वैतवाद का अर्थ है कि दृश्य जगत की तह में उसका आधारस्वरूप एक अखंड, नित्य तत्त्व है, और वही सत्य है। उससे स्वतंत्र और कोई न अलग सत्ता है और न ही आत्मा–परमात्मा में कोई भेद है। दृश्य जगत के नाना रूपों को उसी अव्यक्त ब्रह्म के व्यक्त आभास मानकर सूफी लोग साधना करते हैं और भावमग्न हो जाते हैं। आचार्य शुक्ल कहते हैं कि ''स्थूल एकेश्वरवाद और ब्रह्मवाद में भेद यह हुआ कि एकेश्वरवाद के भीतर बाह्यार्थवाद छिपा है, क्योंकि वह जीवात्मा परमात्मा और जड़ जगत–तीनों को अलग–अलग तत्त्व मानता है, पर ब्रह्मवाद में शुद्ध परमात्मा के अतिरिक्त और कोई सत्ता नहीं मानी जाती, आत्मा और परमात्मा में भी कोई भेद नहीं माना जाता। अतः स्थूल दृष्टिवाले पैगंबरी एकेश्वरवादियों के निकट यह कहना कि आत्मा और परमात्मा एक ही है अथवा मैं ही ब्रह्म हूँ–कुफ्र की बात है। इसी से सूफियों को कट्टर मुसलमान एक तरह के काफिर समझते थे। सूफी मजहबी दस्तूर (कर्मकाण्ड और संस्कार) आदि के संबंध में भी कुछ आजाद दिखाई देते थे और मोक्ष के लिए किसी पैगम्बर आदि मध्यस्थ की जरूरत नहीं बतलाते थे। इस प्रकार के भावों का प्रचार वे कथाओं द्वारा भी किया करते थे।''[1]

भारतीय धर्म–दर्शन में शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने ज्ञान और भक्ति के आधार पर वैदिक धर्म के वास्तविक स्वरूप की पहचान की और उस समय भारत में जितने भी धार्मिक मतवाद कर्मकांड के शिकार थे, उन सबका खंडन किया। उन्होंने जिस नवीन अद्वैतवादी मत की स्थापना की उसके अनुसार सम्पूर्ण जगत में ब्रह्म ही व्याप्त है, उन्होंने साफ कहा कि हम सबमें वही ब्रह्म है। उनके बाद रामानुजाचार्य हुए, जिन्होंने विशिष्ट नाम से अपना मत चलाया। डॉ. माया मिश्र का डॉ. राममूर्ति शर्मा के हवाले से कहना है कि ''रामानुजाचार्य का ब्रह्म निर्गुण न होकर चिदाचिद विशेषणों से विशिष्ट है। ब्रह्म के संबंध में उनकी धारणा यह है कि ब्रह्म समस्त द्वैत प्रपंच का कारण है और सर्वत्र सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापी एवं कल्याणकर है। आचार्य रामानुज के मतानुसार चित् जीव और अचित् जगत ब्रह्म का शरीर है। शरीर तथा आत्मा के संबंध के अनुरूप ही ब्रह्म और चिदाचिद में भी शरीर–शरीरी भाव ही समझना चाहिए।''[2]

रामानुजाचार्य का मत है कि ईश्वर समस्त सृष्टि का नियंता एवं संचालक है, इसलिए वह अंतर्यामी सब कुछ जानता है
और कुछ भी उसके बाहर नहीं है, इसीलिए वह सर्वत्र व्याप्त है।

जीव के संबंध में रामानुज का विचार है कि वह ब्रह्म का ही अंश है। साथ ही वे यह भी प्रतिपादित करते हैं कि परमात्मा ध्यान, ज्ञान और भक्ति का वाचक है। उसकी उपासना की जाती है, वह प्रसन्न होता है और प्रसन्न होकर जीव को मुक्ति प्रदान करता है। इस मुक्ति की अवस्था में जीव और ब्रह्म के बीच की भिन्नता दृष्टिगत होती है। डॉ. राधा कृष्णन के अनुसार–''रामानुज दर्शन में जीव और ब्रह्म के बीच ऐक्य संभव नहीं है। मुक्त जीव में ब्रहम के सर्वव्यापकत्व गुण तो आ जाते हैं, परन्तु उसमें ब्रह्म के सर्वव्यापकत्व एवं कर्तव्य गुण नहीं होते हैं। जीव अणु हैं, किंतु ब्रह्म सर्वव्यापक है।''[3]

माधवाचार्य के अनुसार–''ईश्वर और जीव दो भिन्न सत्ताएँ हैं। इस प्रकार वे भी ईश्वर और जीव को दो भिन्न सत्ताएँ मानते हैं। जीव का चरम लक्ष्य मोक्ष है, क्योंकि यहीं पहुँचकर वह अपने अनुरूप सुख की अपेक्षा करता है। विष्णु का साक्षात्कार होना ही माधव दर्शन के अनुसार मोक्ष है।

निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैत मत की स्थापना की। इनके मत में द्वैत और अद्वैत के प्रति एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण दिखलाई पड़ता है। जीव के संबंध में उनका मत रामानुजाचार्य के अनुसार चेतन स्वरूप ज्ञान, प्रज्ञा और ज्योति युक्त है, क्योंकि वह ब्रह्म से उत्पन्न है और अतः उसमें और ब्रह्म में अभेद न होने से अंशी और अंश भाव है। तात्पर्य यह कि निम्बार्काचार्य जीव को ब्रह्म का अंश मानते हैं। जीव को इस माया–मोह के जगत से मुक्ति भगवान की कृपा से ही मिलती है। इससे स्पष्ट होता है कि जीव ब्रह्म से अलग होते हुए भी एक है–यही द्वैताद्वैत सिद्धांत है। वैष्णव भक्ति की कृष्णभक्ति शाखा के सबसे महत्त्वपूर्ण आचार्य वल्लभ थे। वल्लभाचार्य का सिद्धांत शुद्धद्वैतवाद के नाम से प्रसिद्ध है। उनकी मान्यता थी कि शंकर के मायावाद में भी अद्वैत की सिद्धि संभव है। ब्रह्म सर्वदा सर्वशक्तिमान, सर्वगुण सम्पन्न तथा सच्चिदानंद स्वरूप है। ब्रह्म और जगत के बीच वल्लभाचार्य ने कोई भेद नहीं माना है, वह उसका तथ्य है। आविर्भाव काल में जो जगत है, वह तिरोभाव में ब्रह्म बन जाता है। जीव ईश्वर का ही अंश रूप है, केवल आनंद का अभाव होने के कारण वह बंधन में पड़ा हुआ है। इन्होंने भक्ति के प्रेममय स्वरूप को ही महत्त्व दिया है।

निर्गुणियाँ संत कवियों ने भी अपनी वाणियों में जीव और ब्रह्म के

संबंध का वर्णन किया है। संत कबीर जीव के भीतर ही परमात्मा की अवस्थिति बतलाते हैं–

''साहेब हममें साहेब तुममें, जैसे प्राना बीज में ।
मत कर बंदा गुमान दिल में, खोज देख ले तन में ।
कोटि सूर जहँ करते झिलमिल, नील सिंघ सोहे गगन में।
सब ताप मिट बजायँ देही के, निर्मल होय बैठी जग में।
अनहद घंटा बजै मृदंगा, तन सुख लेहि पियार में।
बिन पानी लागी जहँ बरषा, मोती देखि नदीन में।
एक प्रेम ब्रह्मांड छाय रह्यो है, समझे विरले पूरा।
अंध भेदी कहा समझेंगे, ज्ञान के घर तै दूरा।
बड़े भाग अलमस्त रंग में, कबिरा बोले घट में।
हंस उबारन दुख निबारन, आवागमन मिटै छन में।''[4]

संत कबीर कहते हैं कि एक ही ईश्वर सबके भीतर हैं, सृष्टि के कण–कण में वही व्याप्त हैं। एक और उदाहरण द्रष्टव्य है–

''पानी बिच मीन पियासी, मेहि सुनि–सुनि आवत हाँसी ।।
....बन–बन फिरत उदासी।।''[5]

सभी संत कवि ब्रह्म को अखंड शक्ति ही मानते हैं, संपूर्ण सृष्टि का अंश मात्र है। दादू कहते हैं–

''दादू देख दयाल को, सकल रहा भरपूर।
रोम–रोम में रमि रह्या, तू जनि जानै दूर।।''[6]

संत कबीर ब्रह्म और जीव को एक मानने के साथ–साथ सर्ववाद की भी प्रतिष्ठा करते हैं। वे कहते हैं कि 'मुझे कहाँ ढूँढ़ता है बंदे, मैं तो तेरे पास ही हूँ।'

सूफी कवि प्रेम में 'मैं' और 'तुम' का भेद नहीं मानते। निर्माणकर्ता सत्य में द्वैत की भावना नहीं है, उसमें 'मैं' और 'तुम' सभी एक ही सत्य है, क्योंकि एकत्व में किसी पुकार का भेदभाव नहीं होता। जायसी कहते हैं–

''जियतहिं जुरै मरै एक बारा। पुनि का मीच को मारै मारा।।
आपुहि मीच जियन पुनि, आपुहि तन–मन सोइ।
आपुहि आपु करै जो चाहै, कहाँ सो दूसर कोइ।।''

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की मान्यता है कि सूफियों का अद्वैतवाद बाहरी विचारों से प्रभावित है। सूफी मत के उदय के प्रारंभिक दौर में सूफी संत इस्लाम के सिद्धातों से प्रभावित थे, पर ज्यों–ज्यों ये साधना के पथ पर आगे बढ़ते गए, त्यों–त्यों बाह्य विधानों से उदासीन होकर आंतरिक पक्ष की ओर झुकते गए। इसके बाद तो ये अंत:करण की पवित्रता और हृदय की प्रेमभावना को ही सबसे ज्यादा महत्त्व देने लगे। मुहम्मद साहब के लगभग ढाई सौ वर्ष बाद इनकी चिंतन पद्धति का विकास हुआ और ये इस्लाम के एकेश्वरवाद से अद्वैतवाद की ओर मुड़ गए। ये कुरान की व्याख्या अपने हिसाब से करने लगे। निश्चय ही बाहर से जो विद्वान बगदाद बसरे में आते थे, उनका प्रभाव इनके अद्वैतवादी चिंतन पर पड़ा है।संदर्भ–

1. जायसी ग्रंथावली–आचार्या रामचंद्र शुक्ल, पृ. 101 (भूमिका)
2. हिंदी सूफी काव्य में समन्वय भावना– डॉ. माया मिश्र,पृ. 30–31 से उद्धृत
3. वही, पृ. 33
4. कबीर – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 239
5. वही, पृ. 221
6. हिंदी सूफी काव्य में समन्वय भावना–डॉ. माला मिश्र, पृ. 48 से उद्धृत
7. जायसी ग्रंथावली – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 84 (पद्मावत

लघुकथा

खंडित संबंध

बसन्त राघव
पंचवटी नगर, बोईरदादर, रायगढ़
मो.8319939396

हम दोनों की उम्र में करीब 10–12 साल का अन्तर है। मित्रता उम्र नहीं देखती। हम परस्पर कब घनिष्ठ हो गए पता ही नहीं चला। सुख–दुख में बराबर आना–जाना होता था। मैं कभी–कभी डरता था, हमारी दोस्ती को किसी की नजर न लग जाये। पेशे से वह व्यापारी था और मैं एक फ्रीलांसर कवि। अक्सर हमलोग एक साथ सफर में निकल जाते। पर मैं उम्र की ढलान पर था, कई बार स्वास्थ्य के चलते इंकार भी कर देता। लेकिन उसको जैसे मेरे साहचर्य की आदत–सी हो गई थी। पता नहीं, कैसे उस दिन 18 किलोमीटर दूर वन्यांचल में स्थित मन्दिर देवी दर्शन हेतु चलने के लिए वह बहुत जिद करने लगा। मोटर साइकिल की सवारी मुझे वैसे भी रास नहीं आती थी। नहीं चलने के कुछ अन्य कारण भी थे। उस दिन घर में रहना मेरे लिए बेहद जरूरी भी था। मैंने कारण बताते हुए उस दिन जाने में असमर्थता व्यक्त की। पता नहीं, क्यों वह उस दिन दु:खी–सा हो गया था। शायद मेरे अस्वीकार को वह अपना अपमान समझा बैठा, जबकि ऐसी कोई बात नहीं थी। उसके पश्चात् उसके व्यवहार में परिवर्तन–सा दिखने लगा। न तो अब वह मेरे फोन का जवाब देता और न ही खुद मुझे फोन करने का कष्ट करता। तबसे उसके साथ संवादहीनता की स्थिति बनी हुई है।

एक अंतराल के बाद आज में सोचता हूँ, इतनी मामूली– सी बात पर अगर बरसों का संबंध टूटता है, तो उसका टूट जाना ही बेहतर है। उसकी समझदारी पर मुझे तरस आ रही है। लोग सच ही कहते हैं–मित्रता में आपसी समझदारी बहुत जरूरी है। जो मेरी भावनाओं को इतने दिनों में भी समझ नहीं पाया हो। ऐसे
संबंधों को झेलते रहने का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता।

चिंतन आलेख

कवि नागार्जुन में अर्जुन का विक्षोभ–रस

डॉ. कृष्ण भावुक
गुरुनानक नगर
पटियाला (पंजाब)
मो. 09815165210

महाकवि 'नागार्जुन' के नाम को देखें, तो विस्तार से विचार करने पर हमें उनके व्यक्तित्व में सर्प की–सी फुँफकार के साथ एक हाथी के स्वभाव की–सी उस मस्ती, स्वच्छन्दता और 'महाप्राण निराला' के स्वभाव–सी उन्मुक्तता और गर्जनधर्मिता मिलती है, जिसे कभी श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने अपने समीक्षा–ग्रन्थ 'महाप्राण निराला' में उनके व्यक्तित्व की 'बादल' से तुलना करते हुए विशेष रूप से रेखांकित किया था। नागार्जुन के द्वारा भारतीय चुनावों के उम्मीदवारों पर लिखित ऐसी अनेक पंक्तियों में होने वाले आम चुनावों की 'सर्कस' पर पैने कटाक्षों में ऐसी ही मस्ती और खिलंदड़ेपन की पराकाष्ठा मिलती है। जहाँ वे कहते हैं– ''श्वेत–स्याम–रतनार' अंखियाँ निहार के / सिण्डकेटी प्रभुओं की पग धूर झार के / लौटे हैं दिल्ली से कल टिकट मार के/ खिले हैं दाँत ज्यों दाने अनार के/आये दिन बहार के!''1 वहाँ मस्तमौला दरवेशी स्वभाव वाले नागार्जुन ने निर्देशक जे. ओमप्रकाश के द्वारा निर्देशित एक सुप्रसिद्ध हिन्दी फिल्म के नाम को भी अपनी सर्पीली सपेट में ले लिया है। महाप्राण निराला ने तो 'बादल' नाम से एक कविता दो भागों में भी लिखी थी। दूसरा भाग 'अपरा' नामक संग्रह में छपा था। उसमें और पन्त की बादलों से सम्बन्धित कविता में बादल के साथ एक 'नाग' अर्थात् 'गजराज' का विम्ब भी घुला मिला था।

अब 'अर्जुन' शब्द के निहितार्थ पर विचार करें, तो मुझे बाबा के व्यक्तित्व में 'श्रीमद्भागवतगीता' में वर्णित सव्यसाची अर्जुन का ही स्मरण आता है। 'महाभारत' के मध्य भाग में मूल रूप में आए इस महान ग्रंथ की सर्वोत्तम व्याख्याएँ करनेवालों में लोकमान्य तिलक के उपरांत महात्मा गाँधी की ही परम्परा में एक अल्पज्ञात विद्वान श्री ब्रह्मदत्त वात्स्यायन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय जान पड़ता है। वात्स्यायन जी ने दिल्ली के दो प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक समाचार–पत्रों 'इंडियन एक्सप्रेस' और 'दॅ हिन्दुस्तान टाइम्स' में 36 वर्षों की लम्बी अवधि तक सम्पादन कार्य किया था और अनेक वर्षों के परिश्रम से 'गीता–कथा' नामक 'गीता' की एक टीका प्रकाशित करवाई थी। उस धार्मिक ग्रंथ में 'गीता' के भावार्थ आदि के उपरान्त उसके प्रतिपाद्य विषय पर विचारोत्तेजक आलेख जोड़े गए थे। उनमें 23वें अध्याय में वे 'अर्जुन' नामक पात्र का साधारणीकरण करते हुए उसे समकालीन सन्दर्भ में पूर्ण रूप से प्रासंगिक और समयसंगत ठहराते हुए यह विद्वत्तापूर्ण टिप्पणी करते हैं–''समस्त मानव जाति ही सदा–सर्वदा अर्जुन के रोगों से ग्रस्त रही है और रहेगी–'हम सब अर्जुन हैं।' प्रत्येक मानव 'निज जीवन के नानाविध कुरुक्षेत्र (कार्य के क्षेत्र) में नित्यप्रति सन्देह–शंका, भय–त्रास, मोह–भ्रम, चिन्ता–निराशा, कायरता–कार्पण्य, ईर्ष्या–द्वेष, मद–मात्सर्य, काम–क्रोध, लोभ–क्षोभ, नीति–अनीति, आसक्ति–अनुरक्ति, तृष्णा–वासना, दर्प–अहंकार, स्वार्थ–अभिमान प्रभृति दोष–पिशाचों से आक्रान्त एवं प्रताड़ित होता रहता है।'' किंकत्तव्यविमूढ़ता के उस निविड़ अन्धकार में गीता तीव्रालोक ही उसे राह सुझाता है। कुरुक्षेत्र में कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया हुआ वह दिव्य सन्देश ऐसी अवस्था में संसार कार्यक्षेत्र में परमात्मा द्वारा जीवात्मा को दिये हुए मोक्ष–मन्त्र का रूप धारण कर लेता है।''[2]

संयोगवश नागार्जुन ने 'अन्नपचीसी' में एक दोहा यह भी लिखा है–''अन्नब्रह्म ही ब्रह्म है, बाकी सब ब्रह्म पिशाच/ औघड़, मैथिल नागजी अर्जुन यही उवाच।'' जहाँ उनकी प्रसिद्ध कविता 'अकाल और उसके बाद' में भारतीय इतिहास के एक कालखण्ड विशेष के दस्तावेजी शब्दचित्र सुरक्षित हैं, वहाँ 'अन्नपचीसी' के दोहों में उनका युग बोलता सुना जा सकता है।

मैं समझता हूँ–बाबा नागार्जुन ने बौद्ध महात्मा 'नागार्जुन' से 'अहिंसा' की प्रवृत्ति अपने संस्कारों में लेकर भी उनसे अलग, जैसा कि रहीम ने अपने एक कालजीवी दोहे में एक सपूत के ही समान अपनी गाड़ी पुरानी लोक छोड़कर अपनी एक अलग ही नई लीक पर चलाने का साहस करते हुए सर्वथा एक नई जमीन तोड़ने की शिक्षा दी थी, ठीक उसी प्रकार 'गीता' में कथित अर्जुन के चरित्र को ही अपने व्यक्तित्व के भीतर अवतरित करके संसार में चतुर्दिक फैले हुए अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, दलित–शोषण, बेकारी आदि समस्याओं के मूल कारणों को खोजते हुए प्रभुसत्ता–सम्पन्न व्यक्तियों पर जो व्यंग्य बाण चलाए हैं, वे उन्हें एक युगप्रवर्त्तक 'जनवादी' महाकवि ठहराने के लिए पर्याप्त कहे जा सकते हैं।

आज के लगभग 45 वर्ष पहले जब धर्मयुग में मेरी एक कहानी बहुचर्चित हुई, तो बाबा ने मुझे एक पोस्टकार्ड लिखकर मेरे गरीबखाने पर पधारने की सूचना दी थी। बाद में वे किसी कारण से न आ सके और उनके दर्शनों की कामना अपूर्ण ही रह गयी थी। आज उनके संबंध में यह श्रद्धांजलि लेख लिखते हुए मैं उनके स्वभाव की सरलता, निष्कपटता और निःस्वार्थता जैसे गुणों को स्मरण कर रहा हूँ, जिनके कारण उस काल में कथा–साहित्य और काव्य के 'वटवृक्ष' माने जानेवाले उस महापुरुष ने मुझ जैसे एक उदीयमान और छोटे–से विदुरवत् लेखक के गरीबखाने को अपने चरणों से पावन करने का निश्चय किया था। यही स्वाभाविक उदारता, विशालहृदयता के साथ–साथ निर्धनों, दलितों के प्रति बौद्धवादी करुणा और संवेदना उनके समस्त साहित्य का सारभूत तत्त्व रही है।

रौद्र और विक्षोभ रस का ग्रहण : नागार्जुन के सागर–समान विशाल काव्य–संसार में रस–विरोध की आशंकाएँ उपजाने वाला बला का रौद्र रस भी मिलता है, जो विरोध न होकर विरोधाभास कहा जा सकता है। उसके संबंध में स्वयं उन्होंने ही अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए कहीं लिखा है–''भारतीय काव्य की समीक्षा में नौ रस माने गए हैं, परंतु अपने कटुतिक्त–चरपरी रचना के सिलसिले में मुझे एक और ही रस की अनुभूति होने लगी है। यह था विक्षोभ रस।''

इसी निबंध में बाबा नागार्जुन के ये शब्द भी विशेष रूप से विचारणीय कहे जायेंगे–''बहुजन समाज की व्यापक विपन्नता से यदि आपका प्रत्यक्ष परिचय है, तब आपको विक्षोभ रस का अनुभव होगा। दरिद्रता, अज्ञान, गुलामी, रूढ़िग्रस्तता, रोग, विषमता–इनके प्रति हमारे मन में चरम घृणा का अनुभव नहीं हुआ, तो हम बहुत बड़ी प्रवंचना के शिकार होंगे। गरीबी की सीमा रेखा के नीचे रहनेवाले लोगों की संख्या

10–5 लाख की नहीं है। यह तो हमारी सम्पूर्ण जनसंख्या की आधे से ऊपर चली गयी। ऐसी स्थिति में यदि मेरी चेतना विक्षुब्ध भाव–भूमि पर विराजमान हो गयी, तो अस्वाभाविक नहीं है।'' ये वाक्य डॉ. मैनेजर पाण्डेय जैसे उच्चकोटि के विद्वान ने इधर प्रकाशित अपने एक लेख में ही उद्धृत किये हैं और विशेष रूप से ध्यानाकर्षक कहे जा सकते हैं।

नागार्जुन की एक कविता का नाम है–'हम छी क्षुब्ध' = अर्थात् 'मैं क्षुब्ध हूँ') इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस कवि के अंतर्मन में शोषकों और फासिस्ट प्रवृत्तियों के लोगों के विरुद्ध अपनी जड़ें जमाए बैठे घोर घृणा और वितृष्णा के भावों की सही तर्जुमानी करती है–''सब के भीतर आज स्पंदित / विश्व मानव हेतु शिव संकल्प! / किन्तु 'कृत्रिम एकता' के लिए प्रयासी शासकों पर / देश को आ रहा गुस्सा / हम हैं क्षुब्ध! कर रहा अन्तःकरण विद्रोह / लोकवाणी की यह अवहेलना / है शत्रु लोकोदय का . . .।''

मुंशी प्रेमचन्द ने एक बार अपने साहित्य की रचना का मुख्य प्रयोजन 'धन की शत्रुता' करना ही बतलाया था। नागार्जुन की एक कविता की भी पंक्तियाँ कहती है–"धन पिशाच की चक्र चेतना घूम रही है ! / शासन की गति किस पीनक में झूम रही है? / क्रियाहीन चिंतन का कैसा चमत्कार है! / दस प्रतिशत आलोक और बस अंधकार है!'' (1965 में रचित कविता 'और बस अंधकार है')

इस प्रकार एक भुक्तभोगी के नाते नागार्जुन ने भारत के एक आम आदमी के मन का प्रतिनिधित्व करते हुए यत्र–तत्र– सर्वत्र क्रोध नामक स्थायी भाव की जुगालियों से जिस रौद्र रस का सागर उँड़ेला है, वह अपनी मिसाल आप रहा है। इसी रस को बाबा ने नए 'विक्षोभ' नामक रस से अभिहित करके अपनी मौलिक मेधा पर ही मानो मुहर लगायी थी।

प्रतिहिंसा की भावना : जब इस जनवादी कवि की आशाओं के किले धराशायी होने लगते हैं, तब वह अपने क्रोध को प्रतिहिंसा में बदलने पर विवश होकर ऐसी पंक्तियाँ भी बुनता चला जाता है, ''हाँ, पानी में आग लगाओ / नदियाँ बदला ले ही लेंगी...(सन् 1980 में रचित कविता 'नदियाँ बदला ले ही लेंगी')। जिस प्रकार संस्कृत के नाटककार भवभूति ने सभी रसों का समाहार करुणा नामक रस में माना था, ठीक उसी के समान आजकल की विषम स्थितियों के दृष्टिगत मानो नागार्जुन के लेखें तो 'प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है' हो कर रह जाता है, एकमात्र स्थायी भाव। इसमें स्थायी भाव घृणा और वितृष्णा से निष्पन्न वीभत्स रस के साथ हो 'विक्षोभ' नामक नवाविष्कृत रस का सम्मिश्रण भी स्थल–स्थल पर देखते ही बनता है। वे कहते हैं–''नफरत की अपनी भट्टी में तुम्हें गलाने की कोशिश ही/ मेरे अंदर बार–बार ताकत भरती है/

प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है अपने ऋषि का / वियतकांड के तरुण गुरिल्ले जो करते थे /मेरी प्रिया वही करती है....।''

यहाँ 'प्रिया' शब्द के द्वारा तो कविता रूपी कामिनी की ओर ही संकेत हुआ है। इससे अगली पंक्तियों में समाज के दलित जनों के प्रतीक रामायणकालीन शबर जाति के शम्बूक का प्रतिनिधित्व सँभालते हुए बाबा यह उद्घोषित करने में रंचमात्र भी संकोच नहीं करते हैं कि ''नव–दुर्वासा, शबर–पुत्र मैं, शबर–पितामह/ सभी रसों को गला गलाकर / अभिनव द्रव तैयार करूँगा/ महासिद्ध मैं, मैं नागार्जुन ...।''

इन पंक्तियों में अहं या दर्प के भाव की गन्ध कहीं भी छू तक नहीं गई है, अपितु उसके स्थान पर कवि का अपार अत्मविश्वास और कुछ कर गुजरने की चाह अवश्य झाँकती अनुभव की जा सकती है। अंग्रेजी की उपन्यास लेखिका जेन ऑस्टेन के विश्वविश्रुत उपन्यास 'प्राईड एण्ड प्रैजूडिस' (च्तपकम – च्तमरनकपबम) की प्रेम कथा का एक यही बीज वाक्य अहंवादी कथानायक के चरित्र को माना समेट कर रख देता है–''ॅीमतम जीमतम पे ं तमंस`नचमतपवतपजल व ि उपदक. चतपकम ूपसस इम ंसूंले नदकमत हववक तमहनसंजपवद'' अर्थात् ''जहाँ मन की वास्तविक सर्वोच्चता होती है, वहाँ अहंभाव सदैव अच्छे नियमन में चलेगा।'' कहने की आवश्यकता नहीं है कि पन्त जी, बच्चन जी के शब्दों में यदि कवियों में सौम्य सन्त थे, तो कवियों में एकमात्र औघड़ बाबा नागार्जुन भी ऐसी ही सर्वोच्चता से सम्पन्न अहंवादी व्यक्ति रहे थे।

क्रोध, घृणा, विद्रोह, और व्यंग्य–विद्रूपता के भाव : श्री मंगलेश डबराल और वाचस्पति को दिए गए एक साक्षात्कार में 'क्रोध' की बात चलने पर बाबा ने यह वक्तव्य दिया था–''हर स्वस्थ व्यक्ति को गुस्सा आना ही चाहिए। जो कहता है कि मैं कभी गुस्सा नहीं होता, अजातशत्रु है, वह उल्लू है। हम जीवन में कई तरह की 'डबल डीलिंग' पाते हैं, तब लगता है कि इन लोगों के मुकाबले कोई गुंडा ज्यादा अच्छा है। कथित भद्रलोक, सुगंधित व्यक्तित्व वाले हमको बहुत ही गुस्से में डालते हैं।''[3]

यह विलक्षण रुचियों वाला व्यक्तित्वसम्पन्न कवि अपने मन में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ही ढर्रे पर देश की दुर्दशा पर घोर घृणा और वितृष्णा के भावों को पकाने के बाद सदा वीभत्स रस से पूर्ण काव्य पंक्तियों में ढालता रहता है। यथा राजनीतिक व्यंग्य से भरपूर उनका ही एक दोहा है, 'उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे हैं थूक / जिसमें कानी हो गई शासन की बंदूक।' यहाँ एक सर्वव्यापक क्रांति की आवश्यकता संकेतित की गई है। 'जनयुग' पत्र के 4 जनवरी, सन् 1968 के अंक में नागार्जुन की एक कविता में मानो वर्तमान युग और काल की ही भविष्यवाणी की गई थी और कवि ने तब भी सामाजिक परिवर्तन करने–कराने का पुरजोर आह्वान भी किया था–''देश हमारा भूखा नंगा घायल है बेकारी से / मिले न रोटी–रोजी, भटके दर–दर बने भिखारी से/ स्वाभिमान सम्मान कहाँ है, होली है इंसान की / बदला सत्य, अहिंसा बदली, लाठी, गोली, डंडे हैं/ कानूनों की सड़ी लाश पर प्रजातंत्र के झण्डे हैं / निश्चय राज बदलना होगा शोषक नेताशाही का/ पद–लोलुपता दलबंदी का भ्रष्टाचार तबाही का।'' क्या आपको नहीं लगता यह पूरा परिदृश्य अद्यतन काल का ही है?

इसी प्रकार इन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविता 'गाँधी जी के तीन बंदर' में भी कटाक्षपूर्वक कहा था–''सेठों के हित साध रहे हैं तीनों बंदर बापू के / युग पर प्रवचन लाद रहे हैं तीनों बंदर बापू के/ करें रात–दिन टूर हवाई तीनों बंदर बापू के / बदल–बदलकर चखें मलाई तीनों बंदर बापू के।'' इसी प्रकार 'स्वेदशी शासक' कविता में इनका यह क्रोध चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर इनसे ऐसी कटु और विषरस–सनी तिक्त पंक्तियाँ कहलवाता है–''बताऊँ? कैसी लगती है/ पंचवर्षीय योजना? हिडिम्बा की हिचकी, सुरसा की जंभाई!''

वास्तव में नागार्जुन भारतीय राजनीति की उपमा 'दलदल' और 'पंक' से ही दिया करते थे। उनकी सन् 1966 में रची इन पंक्तियों में उनकी हार्दिक पीड़ा के व्याज से भारतीय जनता की भुखमरी दुरवस्था का ही तीखा बखान है–

''प्रभु, तुम कर दो वमन!
होगा हमारी क्षुधा का शमन !!''

मुंशी प्रेमचन्द 'साहित्य' को 'राजनीति' के आगे चलने वाली एक मशाल घोषित किया करते थे। नागार्जुन ने उसी राजनीति को 'आँखिन की देखी' के अनुसार रक्तिम खून सने पंजों वाली और पंकलिप्त लिजलिजी अवस्था में देखकर व्यंग्य से उसका जयगान ही किया था। मुझे लगता है, जिस प्रकार मुंशी प्रेमचन्द की 'कफन', 'पूस की रात' और 'शतरंज के खिलाड़ी' जैसी कहानियों का ताना–बाना बुनते हुए उनके भीतर का 'विदूषक' उचककर बाहर झाँक–झाँक जाया करता था, ठीक उसी प्रकार नागार्जुन के भीतर भी ऐसा ही कोई विदूषक कहीं हरदम छिपा रहता था। सन् 1968 में प्रकाशित कविता की ये पंक्तियाँ हमारे मत की ही पुष्टि करनेवाली है–''जय हे कीचड़, जय हे पंक! या पोल खुल गई शासक दल के महामंत्र की? जयप्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतंत्र की!'' उस पर तुर्रा यह कि कविता की ये अन्तिम पंक्ति ही इस कविता का शीर्षक बनाया गया है। बीज और खेती के प्रतीक : विश्वविख्यात चित्रकार वान गॉग का एक चित्र है, जिसका नाम है–'द सोअर' अर्थात् बीज बोने वाला। इसको आधार बना कर अज्ञेय द्वारा रचित कविता 'रोपयित्री' का भी यही अर्थ है। इस चित्र का निहितार्थ कदाचित् यही है कि हमें अपने जीवन या कार्यरूपी 'क्षेत्र' (जिसका एक अर्थ खेती भी है) में नवचेतना के बीजों को निरन्तर बोते रहने का लक्ष्य अपनाना होगा, क्योंकि उसी चेतना रूपी 'बीजों' के अंकुरित होने पर हमारे लिए भविष्य की सोन सुनहरी फसलों के रूप में हम सभी दीन–हीनों के सपने कभी–कभी साकार हो सकेंगे। उर्दू कथाकार श्री कृष्ण चन्दर ने कभी लिखा था कि ''हम हिन्दुस्तानी अपने आँसुओं के बीज बोते और सपनों की फसलें काटते हैं।'' विश्व भर में चिन्तन और विचारों के संसार की सार्वभौमिकता और सार्वकालिकता का यही तो विस्मयोत्पादक चमत्कार कहा जाता है।

बाबा नागार्जुन ने भी अपनी कविता में कहीं–कहीं 'खेती' को वर्तमान दूषित व्यवस्था का प्रतीक बनाया है और उसमें डाले जानेवाले नवचेतना रूपी बीजों की बात की है, जिन्हें सदैव परिशुद्ध, स्वच्छ और प्रभावकारक होना ही चाहिए। उन्हीं की ये पंक्तियाँ इन बीजों के निहितस्वार्थी तत्त्वों के द्वारा दूषित कर दिए जाने पर विक्षोभ व्यक्त करती है–''थोड़ा और पानी / बस, थोड़ी और हवा / क्या देर है भला बहार आने में / आज मैं बीज हूँ कल रहूँगा अंकुर।''

ये अपने संकलन 'अपने खेत में' की एक कविता में भी स्पष्ट रूप से 'खेती' और 'बीज' को प्रतीक बनाकर लिखते हैं– ''अपने खेत में हल चला रहा हूँ/ इन दिनों बुआई चल रही है / इर्द–गिर्द की घटनाएँ ही मेरे लिए बीज जुटाती है/ हाँ, बीज में घुन लगी हो, तो/ अंकुर कैसे निकलेंगे?/ जाहिर है बजारू बीजों की/ निर्मम छँटाई करूँगा/ खाद और उर्वरक और सिंचाई के साधनों में भी/ पहले से जियादा ही/चौकसी बरतनी है / मकबूल फिदा हुसैन की/ चौंकाऊ और बाजारू टेकनीक/ हमारी खेती को चौपट कर देगी; अपने रूमाल में गाँठ बाँध लो। बिल्कुल।''

इस प्रकार के आलंकारिक रूपकों में नवीनता और मौलिकता होने पर भी जनसाधारण को समझ में आनेवाली सहजता और सरलता का गुण सर्वत्र नागार्जुन काव्य का एक जमाबिन्दु (प्लस–प्वायेंट) कहा जा सकता है। राजनीतिक व्यंग्यों में स्पष्ट प्रखर तीर और तेवर : प्रखर प्रकृति के नागार्जुन कवि–रूप का उग्रतम रूप उनके राजनीतिक विषयक प्रखर व्यंग्य–वाणों में देखते ही बनता है। नागार्जुन मानव के जीवन में राजनीति से कहीं अधिक 'साहित्य' को ही महत्त्व प्रदान करने के प्रबल पक्षधर के रूप में हिन्दी साहित्याकाश पर उभरनेवाले ध्रुव तारक थे। यद्यपि वे स्वयं वामपन्थी राजनीति से आजीवन सम्बद्ध रहे थे, तथापि उन्होंने एक ओर तो जयप्रकाश नारायण के भाषणों के सम्बन्ध में चुभती हुई बातें लिखने का साहस प्रदर्शित किया था और दूसरी ओर, मार्क्सवादी राजनीति की भी शल्यचिकित्सा से सम्बद्ध रचनाओं से अपनी निष्पक्षता के मुखर साक्ष्य प्रस्तुत करने में कोई भी गुरेज न किया था। उनकी काव्य–कला पर विचार करते हुए श्री शैलेन्द्र चौहान ने अपने आलेख 'नागार्जुन का कवि–कर्म' में यह सही वक्तव्य दिया है–''ये कवि (सर्वश्री अज्ञेय, शमशेरबहादुरसिंह, मुक्तिबोध इत्यादि की ओर संकेत है) मुख्य रूप से साहित्य के आन्दोलनों से, वह भी पश्चिम–प्रेरित आंदोलनों से प्रभावित हो कर कविता करते रहे, जबकि नागार्जुन भारतीय जनता के आंदोलनों से प्रेरित और प्रभावित होकर या यों कहें कि उनमें शामिल होकर कविता करते रहे हैं। बाबा भले नही वामपंथी विचारधारा से जुड़े थे, परंतु उनकी यह विचारधारा भी नितांत भारतीय जनाकांक्षा से जुड़ी हुई थी। यही कारण है कि वर्ष 1962 और 1975 में जब अधिकांश भारतीय 'कम्युनिस्ट' रहस्यमय चुप्पी साधकर बैठे रहे थे, बाबा ने उग्र जन प्रतिक्रिया को अपनी कविताओं के माध्यम से स्वर दिया था। इन्हीं मौकों पर बाबा ने 'पुत्र हूँ भारतमाता का', 'और कुछ नहीं हिन्दुस्तानी है महज', 'क्रांति तुम्हारी तुम्हें मुबारक', 'कम्युनिज्म के पंडे', 'कट्टर कामरेड उवाच' तथा 'इंदु जी इंदु जी, क्या हुआ आपको' जैसी कविताएँ लिखी थीं।''[4]

यहाँ शैलेन्द्र जी के मत की स्थापना की ही पुष्टि में नागार्जुन की ये पंक्तियाँ निदर्शनस्वरूप प्रस्तुत की जा रही हैं –

''क्या तरीका अपनाया है राधे ने इस साल / बैलोंवाले पोस्टर साटे, चमक उठी दीवाल/सरकारी गल्ला चुपके भेज रहा नेपाल/ अंदर रंगे पड़े हैं गाँधी–तिलक–जवाहरलाल!''

(कविता 'नया तरीका')

''ओं वक्तव्य, ओं उद्‌गार, ओं घोषणाएँ/ ओं गद्दी पर आजन्म बज्रासन / ओं शेर के दाँत, भालू के नाखून, मर्कट का फोता / ओं हमेशा हमेशा करेगा राज मेरा पोता / ओं दुर्गा दुर्गा तारा तारा तारा / ओं इसी पेट के अंदर समा जाए सर्वहारा!''

(सन् 1966 में रचित कविता 'मंत्र')

सन् 1947 में भारत को जो स्वतंत्रता प्राप्त हुई, वह कोरी 'राजनीतिक' ही थी, उससे आर्थिक स्वतंत्रता का कोई भी सम्बन्ध न था। कवि ने अपने भारतीय समाज में आर्थिक समानता स्थापित करने की चिन्ताओं को अनेक कविताओं में सार्थक वाणी प्रदान की है। यथा तैलंगाना, नक्सलबाड़ी जैसे आन्दोलनों से प्रभावित होकर ऐसी ही पंक्तियाँ लिखकर अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धता के साक्ष्य प्रस्तुत करने में वे किसी से भी कभी पीछे न रहे। उनकी ये पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं–''होशियार, कुछ देर नहीं है लाल सवेरा आने में/लाल भवानी प्रकट हुई सुना कि तैलंगाने में।''(रचनाकाल सन् 1948)

इसी प्रकार मार्क्सवादी राजनीति और लाल क्रांति के प्रति इनकी प्रतिबद्धता का एक और प्रमाण देखें–''ओ पीपल के पीले पत्ते!/ अब न तुम्हारा रहा जमाना / आज गिरो कि कल गिरो कि परसों / तुमको तो अब गिरना ही है/ बदल गई ऋतु/ लाल–गुलाबी पत्ते कैसे/लह लह लह लह लहा रहे हैं/ यह इनका युग / ये इनके दिन / हट

जाओ, इनको अवसर दो / राह रोककर खड़े न होना / झूठ–मूठ के बड़े न होना।''

वास्तव में बाबा एक ओर तो इस राजनीति में अमित सम्भावनाएँ देखकर इस प्रकार की आशावादी पंक्तियाँ लिखा करते थे–''क्रांति सुगबुगाई है / करवट बदली है क्रांति ने / हवा में भर उठी इन्कलाब के कपूर की खुशबू / बार–बार गूंजा आसमान/ बार–बार उमड़ आए नौजवान / बार–बार लौट गए नौजवान।''1

दूसरी ओर श्री अरविन्द कुमार की इस टिप्पणी से भी सहज ही अपनी सहमति जताई जा सकती है कि ''पर जैसे ही उन्हें संपूर्ण क्रांति की व्यर्थता का एहसास हुआ, उन्होंने उसकी भ्रामक स्थितियों तथा उसमें गलत तत्त्वों की भागीदारी और उसके बिखराव के कारण अपनी प्रसिद्ध कविता 'क्रांति सुगबुगाई है' में यह भी स्पष्ट रूप से लिखा–''खिचड़ी विप्लव देखा हमने/ भोगा हमने क्रांति विलास / अब था–भी खत्म नहीं होगा क्या / संपूर्ण क्रांति का भ्रांति विलास?'' (पत्रिका वही, अंक वही, अरविंद कुमार, आलेख 'जनकवि हूँ, मैं क्यों हकलाऊँ', पृष्ठ 123)। ये पंक्तियाँ इस बात की ओर संकेत करती हैं कि इस राजनीतिक दल की सम्भावनाओं को लेकर कवि के मन में स्थित शंकाओं का मानो कहीं अम्बार लगा पड़ा था।

इस प्रकार समग्रतः हम नागार्जुन को एक स्पष्टवादी और जनवादी चेतना के मुखर और साहसी कवि के रूप में देखते हैं, जिन्होंने हिंदी के अतिरिक्त मराठी, मैथिली और बंगला जैसी अन्य भारतीय भाषाओं के काव्य को भी निश्छल वाणी से समृद्ध करके अपने कट्टर और कठोरतम आलोचकों तक से अपनी बहुमुखी प्रतिभा का ही लोहा मनवाया है। यद्यपि उनकी वाणी में वीर, रौद्र, वीभत्स, हास्य, करुण और अद्‌भुत जैसे अन्य रसों के भी दृष्टान्त प्रभूत संख्या में देखे जा सकते हैं, परन्तु समग्रतः देश की दुर्दशा और उसके समाधान के लिए निर्विकल्पता जैसी स्थितियों से उनके गहरे मानसिक दुःख ने जिस 'विक्षोभ रस' की अवतारणा की है, वह अभूतपूर्व बन पड़ा है। वे 'श्रीमद्‌भागवद्‌गीता' के अर्जुन के ही समान जीवन के विकट और जटिल रणांगण में न केवल 'एकला चलो रे' के ठाकुराना अंदाज में ही अपनी विषम परिस्थितियों से अनथके जूझते रहे, अपितु अपने समान अन्य संकटग्रस्त लोगों को भी ऐसे ही जुझारू 'अर्जुन' बनकर अपनी भयावनी परिस्थितियों से उलझने की सशिक्षा भी प्रदान करते रहे। नागार्जुन के बारे में भी बकौल 'मजाज' लखनवी यह भी कहा जा सकता है कि 'क्या क्या हुआ है हमसे, जुनूँ में न पूछिए / उलझे कभी जमीं से, कभी आसमाँ से हम!'' ऐसे कालजीवी कवि शताब्दियों के बाद ही किसी देश में जन्म लेकर अपने सामाजिक और लेखकीय कर्तव्य को पूर्णतः सम्पन्न किया करते हैं।

संदर्भिका–

1. वात्स्यायन, ब्रह्मदत्त, (नई दिल्ली, फैमिली बुक्स प्रा. लि. प्रथम संस्करण, सन् 1988)
2. वही, वही, वही, अध्याय 23, पृष्ठ 463
3. संपादक मंगलेश डबराल एवं वाचस्पति, 'नागार्जुन मेरे साक्षात्कार'।
4. पत्रिका 'अलाव', नागार्जुन–जन्मशती–विशेषांक, अंक 24 जनवरी फरवरी सन् 2011, आलेख 'नागार्जुन का काव्य–कर्म', पृष्ठ 136–137)।

———

चिंतन

लघुपत्रिकाएँ और उनके प्रकाशन का संकट

शैलेन्द्र चौहान
संपादक 'धरती'
प्रतापनगर, जयपुर
मो.–7838897877

आज के समय में मुख्यधारा की पत्रिकाएँ व अखबार, कारपोरेट जगत व साम्राज्यवादी ताकतों के प्रभाव में समाहित हो रहे हैं। इस वजह से देश के चौथे स्तंभ के प्रति पाठकों में संशय उत्पन्न होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में लघु पत्रिकाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। लघु पत्रिकाएँ पिछलग्गू विमर्श का मंच नहीं है। लघु पत्रिका का चरित्र सत्ता के चरित्र से भिन्न होता है,ये पत्रिकाएँ सृजन का मंच है।

आज नैतिक पतन के दौर में लघु पत्रिकाओं की भूमिकाएँ और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं। रचनाकार वैचारिक लेखन से दूर होते जा रहे हैं, जो समाज के लिए चिंता का विषय है। साम्प्रदायिकता का सवाल हो या धर्मनिरपेक्षता का प्रश्न हो अथवा ग्लोबलाइजेशन का प्रश्न हो हमारी व्यावसायिक पत्रिकाएँ सत्ता विमर्श को ही परोसती रही है। सत्ता विमर्श व उसके पिछलग्गूपन से इतर लघु पत्रिकाएँ अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता, संघर्षशीलता व सकारात्मक सृजनशीलता की पक्षधर हैं। इन बातों के मद्देनजर इतना स्पष्ट है कि लघु पत्रिकाओं की आवश्यकता हमारे यहाँ आज भी है, कल भी थी, भविष्य में भी होगी।

एक कम संसाधनोंवाली अच्छी साहित्यिक–वैचारिक लघु पत्रिका निकालना बेहद कठिन काम है। एक तो अच्छी सामग्री जुटाना, बार–बार उन्हीं चलताऊ घिसे–पिटे नामों से इतर अपने कर्म के प्रति गंभीर एवं नए रचनाकारों से जनपक्षीय तथा वैज्ञानिक दृष्टिसम्पन्न रचनाएँ एकत्रित करना एक श्रमसाध्य और गंभीर काम होता है। इसमें एक सुस्पष्ट, संतुलित और चेतस संपादकीय दृष्टि का होना आवश्यक होता है। ढेरों सामान्य, एकरस, बड़े नामों को बाँड बनाकर भुनानेवाली, विज्ञापनों से धन बटोरनेवाली, सरकारी कृपा पर निर्भर रहनेवाली, एक समूह के हितों को संपुष्ट करनेवाली यशकामी–महत्वाकांक्षी अवसरवादी संपादकों की व्यक्तिगत कुंठाओं को ढोनेवाली, सजावटी शोरूम पत्रिकाओं की भीड़ में निःस्पृह रहकर पत्रिका निकाल पाना एक स्वप्न जैसा ही लगता है। क्या ऐसा संभव है? बीसवीं सदी के प्रारंभ में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ऐसे अनेक मूल्यवान सार्थक प्रयास हुए। बीसवें दशक के उत्तरार्ध में भी कई पत्रिकाएँ इस कसौटी पर खरी उतरी। लघुपत्रिका आंदोलन का एक प्रभाव रहा। लेकिन आज वह दृष्टि, लगन, समर्पण और 'स्व' से विलग होने का भाव कम ही दिखाई देता है। ऐसे प्रयासों में लोगों का सहयोग भी अत्यल्प होता है। क्या ऐसे प्रयास सफल हो सकते हैं? जन सहयोग अगर हो तो अवश्य ही यह संभव है।

व्यंग्य

श्रद्धांजलि सभा में शोध और गृहकार्य

सीताराम गुप्ता
पीतमपुरा
दिल्ली–110034
मो. 9555622323

डॉ. रघुनंदन से मेरा थोड़ा परिचय जरूर था, लेकिन उनसे असली परिचय हुआ चाचाजी की मृत्यु पर। अत्यंत दुखद थी चाचाजी की मृत्यु। उम्र ही क्या थी उनकी? सेवाकाल ही तो चल रहा था। एक–डेढ़ साल बाद सेवानिवृत्ति होनेवाली थी, लेकिन क्या किया जा सकता था? होनी को कौन टाल सकता था? जिसने भी चाचाजी की मृत्यु का दुखद समाचार सुना, दौड़ा चला आया, न जाने कितने लोगों से मित्रता थी चाचाजी की। डीयू के कई प्रतिष्ठित महाविद्यालयों में कार्य कर चुके थे। रस्म पगड़ी कहिए या क्रिया, उस दिन तो कमाल हो गया। पंडाल ठसमठस भरा था लोगों से और अनेक लोग बाहर भी खड़े थे। कार्यक्रम शुरू तो हो गया किसी तरह समय पर, लेकिन कार्यक्रम का समापन होने को ही नहीं आ रहा था। हर व्यक्ति चाहता था कि वह चाचाजी के बारे में कुछ–न–कुछ बोले। लोगों से चाचाजी के संबंध ही ऐसे थे कि उन्हें भुला पाना असंभव था। चाचाजी के मित्रों में हर क्षेत्र,हर तबके के लोग थे।

डॉ. रघुनंदन भी चाचाजी के मित्रों में से ही एक थे। डॉ. रघुनंदन ने आते ही मुझसे कह दिया था–''नरेश मैं जरूर दो शब्द कहना चाहूँगा बीके के बारे में।'' डॉ. रघुनंदन की भी बारी आई। वैसे तो समय बहुत अधिक हो जाने के कारण शेष श्रद्धांजलि प्रदाताओं से क्षमा–याचना की जा चुकी थी, लेकिन इसी बीच अव्यवस्था का लाभ उठाकर किसी तरह डॉ. रघुनंदन ने माइक पर कब्जा कर लिया और दोनों हाथों से उसे जकड़ लिया। एक व्यक्ति ने उनसे माइक छीनने की कोशिश भी की, लेकिन वह सफल न हो सका। डॉ. रघुनंदन ने सबसे पहले अपनी घृष्टता के लिए क्षमा–याचना की और फिर कहा–''यदि मैं उस महान दिवंगत आत्मा के विषय में अपने उद्‌गार व्यक्त नहीं करूँगा, तो ये श्रद्धांजलि सभा अधूरी रह जाएगी। आप नहीं जानते वास्तव में क्या थे बीके! मैं बालकृष्ण को बी.के. ही बुलाता था। एक दिन बी.के. मेरे पास आए और पूछने लगे कि 'कामायनी' का क्या अर्थ होता है? उनमें बड़ी जिज्ञासा थी, वे हर चीज को अच्छी तरह से जानना–समझना चाहते थे और उन लोगों से ही पूछते थे, जो उसके विशेषज्ञ हों। मैं कामायनी का विशेषज्ञ हूँ और उन दिनों कामायनी पर रिसर्च कर रहा था।''

डॉ. रघुनंदन ने एक गहरी साँस ली और पुनः कहने लगे, तो एक दिन बीके मेरे पास आए और पूछा कि कामायनी का क्या अर्थ होता है? मैंने उन्हें कामायनी का अर्थ ही नहीं, कामायनी के बारे में भी बताया। मैंने उन्हें बताया कि जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'कामायनी' खड़ी बोली का श्रेष्ठ महाकाव्य है। यह कश्मीरी शैवदर्शन पर आधारित है। कामायनी पर बहुत सारे लोगों ने रिसर्च की है, पर मैं एक विशेष बिंदु को लेकर कार्य कर रहा हूँ, जिस पर आज तक किसी ने कार्य नहीं किया। जब बी.के. को ये पता चला, तो बहुत खुश हुए और मेरी प्रशंसा की। बी.के. सचमुच दूसरों के अच्छे कार्यों को देखकर खुश होते थे और उनकी प्रशंसा करते थे। जब भी वे मुझसे मिलते, कुछ–न–कुछ जरूर पूछते। मैंने 'कामायनी' पर जितना कार्य किया सब उन्हें बताया, वो मेरी बातें सुनकर हैरान हो जाते थे। मैंने कामायनी पर जो रिसर्च की उसको सुनकर बी.के. ही क्या सभी लोग हैरान हो जाते थे।'' डॉ. रघुनंदन ने और भी बहुत–सी बातें बतलायीं अपने बारे में और 'कामायनी' पर शोध के बारे में। दरअसल अब वे बी.के. को भूलकर अपने स्वयं के बारे में और कामायनी तथा अपने शोध पर केंद्रित हो चुके थे। डॉ. रघुनंदन और भी बहुत–सी बातें बतलाते, यदि चुपके से उनके कान में कुछ कहा न गया होता।

उन्होंने अपनी श्रद्धांजलि का समापन करते हुए इतना ही कहा–''समय कम है, बातें बहुत हैं। कामायनी के बारे में पूर्ण चर्चा करने के लिए महीनों और सालों की नहीं, सदियों की जरूरत होगी। बी.के, के लिए सही श्रद्धांजलि यही होगी कि हम भी उनकी तरह जिज्ञासु बनें। अब मैं उनके बड़े पुत्र से निवेदन करूँगा कि बी.के. की आत्मा की शांति के लिए महामृत्युंजय मंत्र का दस हजार बार जाप करें। यदि दस हजार बार न कर सकें, तो एक लाख बार करें।'' मुझे बड़ा अटपटा लग रहा था उनका ये गणित कि दस हजार बार या फिर एक लाख बार महामृत्युंजय मंत्र का जाप करें। कहना चाहिए कि एक लाख बार या कम से कम दस हजार बार शायद उलट गया होगा वाक्य। इसके बाद उन्होंने कहा–''अब मैं बी.के, के भाई साहब से, जो मेरे भी भाई के समान हैं, निवेदन करूँगा कि वो भी इस महान दिवंगत आत्मा की शांति के लिए 'सत्यार्थ प्रकाश' का अध्ययन करें।''

दिवंगत आत्मा की शांति के लिए 'सत्यार्थ प्रकाश' के अध्ययन की बात मेरी अल्प बुद्धि में नहीं आ रही थी, लेकिन तभी एकदम मेरे मन में ख़याल आया कि ये तो डॉ. रघुनंदन के सर्वमत समभाव के सिद्धांत का पोषक हैं। इस भावना के बिना 'कामायनी' जैसी महान कृति पर कैसे शोध किया जा सकता है? तभी मैंने देखा कि दो व्यक्तियों को गृह कार्य देने के बाद डॉ. रघुनंदन की आँखें मुझे ही तलाश रही थीं। वो मुझे नहीं देख पा रहे थे, लेकिन मैं उन्हें अच्छी तरह देख रहा था। मुझे स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा था कि उनका अगला टारगेट मैं ही था। चाचाजी की आत्मा की शांति के लिए महामृत्युंजय मंत्र के जाप और सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन के साथ–साथ कामायनी में चाचाजी की जिज्ञासा के कारण कामायनी का विशद अध्ययन अथवा सर्वमत समभाव या सर्वधर्म समभाव के पोषण के लिए कुरान का अध्ययन भी अपेक्षित था, जिसे संभवतः मुझे सौंपा जाना था; लेकिन इसी बीच किसी व्यक्ति ने अनुनय–विनय करके और अनुनय–विनय का उन पर कोई प्रभाव न पड़ने पर जबरदस्ती डॉ. रघुनंदन के हाथों से माइक वापस लेने में सफलता हासिल कर ली और मैं गृहकार्य मिलने से बाल–बाल बच गया।

संस्मरण

कंसोल रूम

प्रतिभा विश्वकर्मा
बनारस (उत्तरप्रदेश)

घड़ी में ठीक 6: 13 मिनट हो रहे थे और संकेत धुन भेजा जा रहा था। लगभग 2 मिनट संकेत धुन के बजने के बाद एक मीठी–सी आवाज गूँज उठी, जो बोल रही थी कि यह आकाशवाणी है। 100.0 मेगावाट पर आप सुन रहे हैं, विविध भारती का वाराणसी केंद्र। शाम के 6: 15 मिनट होने को हैं, आरंभ होती है, हमारी आज की 'सायंकालीन सभा' और अब कुछ विज्ञापन वाला फेडर दे दिया गया और लगातार चार विज्ञापन जाने थे। सबसे पहला विज्ञापन जो जा रहा था, वह था–'निरमा वॉशिंग पाउडर' का, इसके बाद दूसरा था–'क्लिनिक प्लस' हम रखें आपके बालों का खास। ख्याल तीसरा था–'वीको वज्रदंती' आज से इस्तेमाल करो वर्ना बाद में पछताओ और चौथा विज्ञापन था–'घड़ी डिटर्जेंट पाउडर' पहले इस्तेमाल करो, फिर विश्वास करो–विज्ञापन जा रहा है। और मैं यानी प्रभा अपनी दोनों ओर रखे कंप्यूटर में लगे तरतीब से कार्यक्रमों को देखकर आश्वस्त हूँ कि सब कुछ व्यवस्थित है।

जैसे ही चौथा विज्ञापन समाप्त हुआ। मैंने विज्ञापन का फेडर नीचे कर दिया और माइक को ऑन कर कहा–इस छोटे–से अंतराल के बाद हाजिर है आपकी रेडियो सखी प्रभा, आपके पसंदीदा कार्यक्रम गीतांजलि के साथ। तो साथियो! आइए, सुनते हैं इस कार्यक्रम का पहला, जिसे हमने लिया है फिल्म 'घर' से गुलजार के लिखे इस गीत को संगीत से सजाया है राहुल देव बर्मन ने और आवाजें है लता मंगेशकर के साथ किशोर कुमार की, तो दोस्तों लीजिए, सुनिए यह प्यारा–सा गीत और मैंने माइक का बटन बंद कर गाने के फेडर को एक निश्चित सीमा तक ले जाकर छोड़ दिया। गाया जा रहा है–'तेरे बिना जिया जाए ना' वाकई बहुत ही खूबसूरत गीत है। मैं खुद भी इस गीत को गुनगुना रही थी कि तभी कंसोल रूम का दरवाज खुला और सामने से पुराणिक जी बिना किसी सूचना के अंदर चले आए, जबकि ऑन एयर कार्यक्रम जाते समय, किसी का भी कंसोल रूम में आने की इजाजत नहीं होती। वो बेझिझक आये और मेरे पीछे खड़े होकर बोले–''मुझे अपना कुछ विज्ञापन सेट करना है, इसलिए तुम थोड़ी देर के लिए हट जाओ।'' उनका इस तरह से मुझसे बात करना और अंदर चले आना मुझे बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगा; लेकिन मैं उनकी बहुत इज्जत करती थी। उनकी आवाज रेडियो पर सुनते–सुनते, मेरा बचपन तो बीता ही बीता, मेरी युवावस्था भी बीत गई थी। वह एक अति सामान्य कद काठी के बेहद चीमड़ शारीरिक संरचना के मालिक थे और बेहद घमंडी भी। चाहती तो थी कि बेहद छोटे–से शब्दों में कुछ थोड़ा–सा बड़ा कह दूँ, पर लिहाजन कुछ कह नहीं पाई, सिवाय इसके कि इस गीत को भेज लूँ, फिर हट जाती हूँ। पहला गीत समाप्त हुआ और मैंने फिर से अपनी दायीं ओर रखे कंप्यूटर से चल रहे गीत को रोककर उसका फेडर नीचे कर दिया और माइक का बटन दबाकर अनाउंसमेंट शुरू कर दिया कि 'दोस्तों आइए सुनते हैं इस कार्यक्रम का अगला गीत, लता मंगेशकर की आवाज में फिल्म का नाम है राजा जानी, आनंद बक्शी के लिखे इस गीत को संगीत से सजाया है लक्ष्मीकांत प्यारेलाल ने और मैंने माइक का बटन बंद कर दिया इसके बाद मैंने गाने को अपनी दायीं ओर रखे कंप्यूटर से गाने को प्ले कर फेटर को एक निश्चित सीमा तक ले जाकर छोड़ दिया और मेरे पीछे खड़े पुराणिक जी से मैंने कहा कि ठीक है। आप अपना काम कर लीजिए और में कुर्सी छोड़कर खड़ी हो गई। खड़ी तो होना ही था भई वह पक्के वाले उद्घोषक (अनाउंसर) जो थे यानी कि परमानेंट वाले और मैं ठहरी केजुअल अनाउंसर अगर मैं भी परमानेंट वाली होती, तो मेरे ख्याल से वह उस समय तो मेरे सामने नहीं होते, और होते भी तो मैं उन्हें तत्काल उसी दरवाजे से उन्हें बाहर भेज देती। पर वह क्या है न कि ऐसा कुछ था नहीं। दरअसल क्या है न कि कई काम, कई बार कुछ ज्यादा ही बुरे लगते हैं। पर हम उसका कुछ थोड़ा भी विरोध नहीं कर पाते...। वो क्या है न कि वह जिस समुद्र के पुराने पारंगत मगरमच्छ थे, उस समुद्र कि मैं बिल्कुल नई–नई गोल्ड फिश थी और ड्यूटी ऑफिसर तो मेरे आने के एक सप्ताह बाद ही आए थे बेचारे, तो वह भी बिल्कुल नए–नए वाले फिश थे। इसलिए उन बेचारे से कोई उम्मीद नहीं की जा सकती थी। मैं चुपचाप पीछे थोड़ी दूर पर खड़ी हो, उनके बाहर जाने का बड़ी ही बेसब्री से इंतजार करने लगी। थोड़ी देर के बाद जब मैंने बाई तरफ के कंप्यूटर को देखा तो मेरे सेट किए हुए सारे विज्ञापन गायब थे और वो महाशय अपना कार्यक्रम सेट करने में लगे हुए थे। खैर, यह सब देखकर क्रोध तो होना ही था, जो कि हुआ भी मुझे क्रोध होते–होते अभी कुछ मिनट ही बीते थे कि ड्यूटी ऑफिसर दौड़े–दौड़े केबिन में घुस आए और आँखें लाल–लाल दिखाते हुए बोले कि ''प्रोग्राम क्यों नहीं जा रहा है...?'' और मैंने तुरंत ही फेडर की ओर देखा, तो जो फेडर मैंने ऊपर किया था। वह मुझे नीचे दिखाई दिया। मेरी कुर्सी पर पुराणिक जी को देखकर ड्यूटी ऑफिसर ने उन्हें तो कुछ नहीं कहा, पर मेरी अच्छी खबर ले ली और इसी दौरान मैंने फिर से फेडर को ऊपर किया। लेकिन थोड़ी ही देर में यह खूबसूरत गाना समाप्त भी हो गया और मेरे प्यारे श्रोता उसे सुन भी नहीं पाए। इस बात का मुझे बहुत अफसोस है। पर अब तो जो होना था, हो चुका था। 'का वर्षा जब कृषि सुखाने' खैर, बड़े ही धैर्य के साथ मैं वहीं खड़ी–खड़ी ही, थोड़ा झुककर अपने श्रोताओं को अगले गीत की जानकारी देकर गीत प्ले कर दिया। फिर फेडर ऊपर करने के बाद मैं वहाँ से कहीं हटी ही नहीं। जब गाने का अंत होने ही वाला था, तभी पुराणिक जी ने मेरी कुर्सी मुझे वापस की और फिर तो जैसे–तैसे मैंने अपना सारा कार्यक्रम निपटाया, यह तो मैं ही जानती हूँ। और शायद वह भी जिनकी वजह से यह सारी समस्याएँ उत्पन्न हुईं...।

कहानी

ज़ख़्म बना नासूर

आलोक भारती
जयनगर, मधुबनी, बिहार
मो.–8292350609

पूरी रात बीतने के बाद अगले पिता गोपाल राय को घटना की जानकारी मिली। गोपाल राय कई दिनों से बाहर गए थे। केशव पुलिस कस्टडी में था। खबर मिलते ही भागे–भागे आए। आने पर उन्होंने अपने करीबी मित्र राजन से घटना के बारे में चर्चा की। कई और लोगों को भी जानकारी दी। इस पर राजन ने उन्हें मशविरा देते हुए कहा –

''इस मामले में आपको खुद जाना चाहिए, सर...! नहीं तो काम बिगड़ सकता है...।''

सुनकर गोपाल राय के चेहरे पर पसीने की बूँदें छलक आयी। धोती के कोर से चेहरा पोछते हुए चिन्तित हो बोले–

''तुम्हीं बताओ, राजन...! हमारा तो पुलिस से कभी सामना हुआ नहीं। वह भी सीमा पार की पुलिस से...। अब क्या होगा...?''

आखिर राजन के समझाने पर उसकी सलाह मान गोपाल राय एक सहयोगी के साथ सीमा पार के बाजार की ओर चल पड़े।

वर्षों से केशव बेरोजगार था। कोशिशें बहुत हुई, मगर न तो वह कारोबार में जम पाया और न कभी सर्विस में टिक पाया। उसका सभी राजनीतिक पार्टी के साथ जुड़ाव था। हर काम के पैसे लेता। नेताओं के आयोजन में कुछ मिल जाता, इसी से वह संतुष्ट हो जाता। कभी पैसों की जरूरत होती, तो पिता से माँगने में भी संकोच नहीं करता। अक्सर दोस्तों–संग पीने–पिलाने का दौर चलता रहता। कई बार नशे में धुत होकर घर आता और हंगामा खड़ा कर देता। इससे पिता को शर्मिन्दा होना पड़ता। प्रौढ़ हो चुके केशव की ये आदतें उसमें घर कर चुकी थी...।

केशव को दो संताने थीं। बड़ा लड़का अंकित और छोटी सुष्मिता। बाहर के कॉलेज में पढ़ते थे। प्रोफेसर गोपाल राय को एक साथ दो परिवारों का खर्च उठाना पड़ता। पेंशन से मिली राशि भी कभी कम पड़ती, तो लोगों का कर्ज हो जाता। जबकि छोटा अनिकेत स्वावलम्बी था। अपनी मेहनत के बल पर दूसरे शहर में सुपरवाईजर की सर्विस में लगा था। परिवार को अपने साथ ही रखता।

जबकि पिता गोपाल राय की समाज में सम्भ्रान्त, सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में अमिट पहचान थी। उनका किसी राजनीतिक पार्टी से लगाव न था। फिर भी सभी पार्टियाँ उन्हें आदर की नजरों से देखतीं। समय–समय पर प्रशासन की कुरीतियों, आन्दोलन, धरना प्रदर्शन के जरिए उजागर करते रहते। मौके पर संकट में फँसे व्यक्ति की मदद के लिए अपनी टीम के लोगों के साथ तैयार रहते। बाढ़ हो या सुखाड़ जैसी आपदा, टीम के साथ चंदा ऊगाही को पहुँच जाते। फिर खुद ही टीम के साथ राहत कार्यों में लग जाते। कई बार अपनी बात मनवाने के लिए उन्हें पुलिस की लाठियाँ भी खानी पड़ी, जेल जाना पड़ा; लेकिन कभी अपनी शान पर आँच नहीं आने दी। पंचायत की बैठक में भी उन्हें अक्सर बुलाया जाता।

सीमा पार के बाजार से केशव को किसी परिचित ने अपने यहाँ आने का ऑफर किया था। इस पर केशव अपने कुछ साथियों के साथ बाईक से गन्तव्य के लिए चल पड़ा। शाम को वहीं एक होटल में सभी इकट्ठे हुए। देर रात तक उनमें पीने–पिलाने का दौर चलता रहा। तभी किसी बात पर सभी आपस में उलझ गए। नौबत हाथापाई से लेकर मारपीट में बदल गई। जिसके हाथ जो लगा, उसी से एक दूसरे पर वार करने लगा। तभी शोर सुनकर गश्ती पर निकली पुलिस आ गई। इसपर पुलिस से केशव की कहा–सुनी होने लगी। तभी मौका देख उसके सभी साथी भाग गए। फिर पुलिस ने इन्सपेक्टर के इशारे पर होटल की तलाशी ली गई। तलाशी में पुलिस को एक छोटा कार्टुन मिला, जिसे वह अपने साथ लेकर चलती बनी। इसके साथ ही केशव को भी पूछताछ के लिए थाने ले गई।

गन्तव्य के लिए चले प्रो. गोपाल राय सीमा पार के बाजार पहुँचने पर अपने एक मित्र मनसुख लाल के घर पहुँचे। उनके यहाँ कुछ देर रूककर उन्हें घटना की जानकारी दी। फिर यहाँ के प्रतष्ठित व्यवसायी शंकर लाल से मिलने की योजना बनी।

इसी बीच उनके घर से चले कुछ लोग उनसे मिलने मित्र के यहाँ पहुँचे। ताजा स्थिति से अवगत कराते हुए उन्होंने कहा–

''दारोगा ने उसे छोड़ने के लिए लाख रुपये की माँग की है...। देर हुई तो चालान कर दिया जायगा...।''

सुनकर गोपाल राय सहम गए। कुछ देर की खामोशी के बाद बोले–''आप लोग वहीं रहकर उनसे बातें कीजिए...। हमलोग भी आते हैं...।''

फिर गोपाल राय मित्र मनसुख लाल के साथ शंकर लाल से मिलने चल पड़े। शंकर लाल ने उनका गर्म जोशी से स्वागत किया। कुछ देर की खमोशी के बाद गोपाल राय की आँखें अनायास ही भर आई। वे भावुक हो गए। कुछ समय पूर्व की केशव से जुड़ी एक घटना उनके दिलोदिमाग में चित्रवत् साकार हो उठी।

गुरु पूर्णिमा का दिन। सुबह दस बजे। गोपाल राय घर के बाहर बनी फूल की झाड़ी में लगी चौकी पर बैठे रेडियो सुन रहे थे। उनके कुछ परिचित भी बैठे थे। लोग आते। चरण स्पर्श कर कुछ फूल, कुछ रुपये भेंट कर लौट जाते। तभी कुछ लोग केशव को रिक्शे से सहारा देकर उतारते दिखे। खून से फटे कपड़े, डगमगाते कदमोंसे केशव उनके सामने खड़ा हो गया। लथपथ शरीर धूल सने, देखकर गोपाल राय विह्वल हो गए। पास रखी कुर्सी पर केशव को बैठाते हुए उनमें से एक ने कहा–

''लो सम्भालो, गुरू जी! अपने लाडले को। आज ई. बाल–बाल बचा है।''

चौंकी से उतर गोपाल राय केशव के करीब आए, देखा सिर से खून टपक रहा था। आँखों के बीच काले गढ़े पड़े थे। छाती और ठेहुने में भी चोट के गहरे निशान थे।

''लगता है इसने फिर से लेनी शुरू कर दी...। ऐसी औलाद से बेऔलाद रहना अच्छा...।''

तभी साथ आया दूसरा आदमी गोपाल राय के पैर छूकर बोला–''गुरूजी! आप चाहें तो शपथ ले लें...। यह तो बाईक से कहीं जा रहा था। तभी बच्चों से भरी टेम्पो पलट गई। बच्चे चिल्लाने लगे। केशव से रहा नहीं गया। उसने राह चलते कई लोगों के साथ मिलकर टैम्पो सीधा करने की कोशिश की। तभी इंट पर पैर पड़ने से यह फिसल गया। फिर सम्भल नहीं पाया... और सिर सड़क से टकरा गया...।''

...तभी किसी की आवाज सुन प्रोफेसर की तंद्रा भंग हो गयी। ''प्रोफेसर साहब! कहाँ खो गए आप...! अरे रो रहे हैं आप? थोड़ा धैर्य रखिए...।''

उनके अन्तर्मन से आवाज उठ रही थी–केशव में लाख बुराइयाँ हों...। फिर भी उसके अन्दर छिपी कुछ अच्छाइयाँ भी थीं। चेहरे पर छलक आए इन आँसुओं का भेद कौन जान पाता! ये वेबसी के आँसू थे या खुशी के...?

फिर उनके साथ आए मनसुख लाल ने शंकर लाल को स्थिति की जानकारी थी। उन्होंने गोपाल राय को भरसक मदद का आश्वासन दिया। फिर तत्काल इन्होंने एस.पी. चन्द्र प्रकाश को फोन लगाया। फिर उनसे बात कर घटना की विस्तृत जानकारी दी। घटना से एस.पी. ने अनभिज्ञता प्रकट करते हुए स्वयं मिलने की बात कही ।

पूरे क्षेत्र के प्रशासनिक अफसरों एवं औद्योगिक क्षेत्र में शंकर लाल की एक खास पहचान थी। कोई भी सामाजिक काम उनके बगैर पूरा नहीं होता। हर किसी को इनकी जरूरत थी। इन्कार करना इनकी प्रवृत्ति में ही नहीं था ।

तय समय पर शंकर लाल सभी के साथ एस.पी. से मिलने पहुँचे। रास्ते में सबने देखा, थाने के बाहर कई लोग धूम रहे हैं। पूछने पर उनमें से एक ने बताया – ''अन्दर मीटिंग चल रही है...। मौका मिलने पर बात फाइनल होगी।''

फिर सभी आगे बढ़ गए। इनके पहुँचने से पहले ही फोन कर एस.पी. ने पूरी जानकारी ले ली थी। उनके पहुँचने पर एस.पी. ने उन्हें पूरी बात समझाते हुए कहा–''शंकर जी, मैं आपका सम्मान करता हूँ...। लेकिन काम हमें कानून के दायरे में ही करना होता है। बेहतर होगा ऐसे मामलों में आप ना पड़ें...। मामला गम्भीर है। केवल मार–पीट नहीं हुई...। तलाशी में मिले कार्टून में दो किलो ड्रग्स के पैकेट मिले हैं। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में इसकी कीमत दो करोड़ हो सकती है। अब हम आपको कैसे मदद करें?

सुनकर शंकर लाल गम्भीर हो गए। काफी देर की खामोशी के बाद उन्होंने एस.पी. साहब को आश्वस्त करते हुए कहा –

''देखिए, सर! यह आदमी वैसा है नहीं...। इसके पिता को में वर्षों से जानता हूँ...। कभी किसी का बुरा इनसे नहीं हुआ। सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में इन्हें सभी जानते हैं। दूसरों की मदद को हर समय तैयार रहते हैं...। इसे इसमें फँसाया गया है...। उन्हीं लोगों में से किसी का यह सामान हो सकता है, जो–जो पहले ही भाग गए...।''

क्षण भर रूक कर फिर कहने लगे–''मौके पर पुलिस न पहुँची होती, तो शायद किसी की जान भी जा सकती थी।''

काफी देर तक चर्चा होती रही। फिर शंकर लाल के भरोसा देने पर आश्वस्त हो, एस.पी. ने थाने को फोन पर निर्देश दिया कि एक लाख के बॉण्ड पेपर पर सम्बन्धित पक्षों से हस्ताक्षर करवा आरोपी को रिलीज कर दिया जाए।

लगभग दो घंटे बाद केशव उनके साथ था। उसे किसी तरह की यातना नहीं दी गई थी। बाद में पता चला ड्रग्स सप्लाई के रूप में उन्हें बीस हजार मिलने थे। हिस्सा अधिक लेने की बात पर उनमें झगड़ा हो गया।

थाने के आगे चक्कर लगा रहे लोग केशव को उनके साथ देख हैरान रह गए। मामला उनके हाथ से निकल चुका था।

समय गुजरता गया। एक दिन सुबह को घर से निकला केशव रात नौ बजे आया। सभी चिन्ता में घुल रहे थे। पिता गोपाल राय का किसी किताब पर ध्यान था।

तभी केशव उनके सामने आकर खड़ा हो गया। धूल सने कपड़े। पैर के साथ शरीर भी बेकाबू। मानों अब गिरा, तब गिरा। बिखरे हुए बालों में भी धूल। पसीने से तर चेहरा। झपकती सुर्ख औखें...!

उसकी हालत देख गोपाल राय विचलित हुए बिना पूछ बैठे–''इतनी देर कहाँ लगा दी...?''

''कहीं भी रहूँ...। आपको मतलब...?''

''मतलब कैसे नहीं...। घर है, परिवार है... सभी चिन्तित हैं...। तुम्हारी औरत ने कुछ खाया नहीं।''

इस पर तमक कर केशव बोला–''कान खोलकर कर सुनो, प्रोफेसर! तू मेरा बाप है...। अब तुम मुझे बेवकूफ नहीं बना सकते, समझे!''

केशव के बदले तेवर देख गोपाल राय हताश हो गए...! थोड़ी देर बाद उसने फिर चिल्लाते हुए कहा –

''मुझे मेरा हिस्सा चाहिए। चुपचाप कर दीजिए...। वर्ना खून खराबा हो जाएगा...।''

''आज कैसी बातें करता है, रे? हिस्सा तो सभी का होगा। अभी तो मैं जिन्दा हूँ...।''

सुनकर केशव पिता के सामने तनकर खड़ा हो गया। फिर गरजते हुए बोला–''चुप्प...! बुढे..खुसट...! मेरे आगे बेसी जुबान मत चलाना। नहीं तो एक दिन ये आवाज भी बन्द हो जायेगी, समझे!''

उसके बोलने की भाषा सुनकर उन्हें लगा कि कोई इसे उकसा रहा है। फिर भी उन्होंने संयम बरतते हुए बहू को आवाज दी – ''बहू..! ओ बहू?''

कुछ देर बाद केशव की पत्नी के आने पर उन्होंने उससे कहा–''देखो, बहु! यह अपने आपे में नहीं है...। इसे अन्दर ले जाओ...। मुँह–हाथ धुलवाकर खाना खिलाओ...। फिर आराम करने दो...।''

फिर बड़बड़ाते हुए खुद ही बोलने लगे–''यह कभी नहीं सुधरेगा। इसके कारण आये दिन शर्मिन्दा होना पड़ता है। न जानें किस जनम का अभिशाप है यह।''

कहानी

सवालिया आँखें

भगवती प्रसाद द्विवेदी
पोस्ट बॉक्स 115
जीपीओ, पटना
मो. 9304693031

'जागो ब्रजराज कुँवर, भोर भई।' बाबूजी का चिर परिचित अलाप कानों में गूंजते ही वह जम्हाई लेता हुआ उठ बैठा। सबसे पहले ओसारे में से नजरें अपने आप सामने खलिहान में खड़े बुढवा पीपल के पेड़ पर जा अटकीं । तमाम पत्तियों का बेहिचक ताबड़तोड़ डोलना और गिद्धों के झुंड का चिल्ल–पों मचाना जारी हो गया था। आज भी वह बुढ़वा पेड़ खामोश खड़ा था। बरसों पहले एक रात अचानक उसपर बिजली गिर पड़ी थी। मगर वह ऊपर से ठूँठ होकर भी 'हम टूट सकते हैं, मगर झुक नहीं सकते' की मुद्रा में गरदन उठाए खड़ा था– एक अपाहिज सिपाही की मानिन्द। उस मरियल पेड़ की तुलना में वह खुद कितना झुका–टूटा, गाँव के लोग कितने झुके–उठे और कितने जिंदगी की स्याह अंधियारी में एकाएक कहीं लुप्त हो गये, सब कुछ उसकी आँखों की सीढ़ियों पर आहिस्ता–आहिस्ता चढ़ने को हुआ। तभी उसने गरदन घुमाकर सिर को एक झटका दिया–धत् तेरे की! सुबह–सुबह क्या लेकर उठ गया वहा।

'बबुआ, टट्टी–फरागित जाओगे न?' बाबूजी मवेशियों को सानी–पानी गोतकर अब गोबर उठाने लगे थे।

पुनः एक जम्हाई लेकर उसने पूरा बदन उमेठा और पैरों को खटिया से नीचे लटकाकर चप्पलें टटोलने लगा। दाढी काका अपने दुआर से रट्टू सुग्गे की तरह अपना वही पुराना भजन बार–बार दोहरा रहे थे–'सीताराम गाओ, सीताराम गाओ, मानुस तनवा हई बड़ा ही मुश्किल है, तो सीताराम गाओ।' अपनी पुरानी आदत के मुताबिक वह खेत से दिशा–मैदान होकर एक खोंची माटी जरूर लाए होंगे। जबसे वह मिलिटरी से रिटायर होकर हमेशा–हमेशा के लिए गाँव आए, उनकी यह दिनचर्या ही बन गई–दिनभर खेतों से माटी ढोना, दुआर भरना और थक–हार जाने पर गाँव के नवहों के साथ ताश खेलने में मशगूल हो जाना।

रामप्रीत बाबा अब अपनी गाय को नॉद पर से उतारकर दूध दुहने लगे थे और उनकी दूध दुहने की आवाज वातावरण पर छा गई थी। एकाएक उसे याद हो आया, जब बाबा से गाँव का कोई आदमी अपनी गाय दुहने को कहता, तो वह दुहते–दुहते उसे चिकोटी काट देते, जिससे गाय बिजुककर लात मार देती और दुहा–दुहाया दूध धरती पर पसर जाता। अचानक उसके चेहरे पर मुस्कान की प्रातः कालीन लालिमा पसर गई। सानी–पानी में थुथने डुबोकर मुँह चलाते बैलों की घंटियों टुनटुना रही थीं।

कौवे काँव–काँव करते हुए यहाँ–वहाँ ऊधम मचा रहे थे। रमेसर चाचा का–'नन्हका उठो लाल! अब आँखें खोलो, पानी लाई हूँ, मुँह धो लो' वाली कविता चिल्ला–चिल्लाकर याद कर रहा था। सामने ही दियरखे पर घरी हुई ढिबरी अब बुझा दी गई थी। नन्हके पर नजर पड़ते ही उसे अपना बचपन आँखों के सम्मुख घुर गया। बाबूजी कुट्टी–छपाटी काटने के लिए उठते थे और उसे जगाकर फिर अपनी ही धुन में लवलीन हो जाया करते थे। वह आँखें मलते हुए उठता था और हाथ–मुँह धोकर रटने लगता था–'दिस स्टेजा हैज बीन टेकेन फ्रॉम द पोयम' तब गाँव भर में चर्चा का विषय बन गया था–राजेन्दर का लड़का अंगरेजी बोलता है, अंगरेजी में पाठ पढता है, लिखता है! अब तो वह शहर में आठ बजे तक खर्राटे लेता रहता है। पता ही नहीं, चलता कि कब भोर हुई, कब मुर्गा बोला और कब पूर्वी क्षितिज पर लालिमा छाई। खटिया के नीचे पड़ा लोटा उठाकर वह रेलवे लाइन की तरफ बढ़ गया। कुछेक औरतें दिशा–मैदान होकर उधर से लौट रही थीं। कुछेक लोटा लिये हुए, मगर अधिकांश खाली हाथ। धत् तेरे की, कहाँ मैदान होना और कहाँ पानी छूना उसे अनायास धुकधुकी बरने लगी। आगे बढ़कर उसने छवर की राह पकड़ ली।

काले–कलूटे लड़कों का एक हुजूम कुलांचते हुए आया और उसके बगल से होकर सर्र–से गुजर गया। एक कुनमुनाया भी– 'ई के ह रे?'

'होइहन कवनो शहरी बाबा'–दो–तीन लौंडे समवेत स्वर में बोले।

वह उन्हें गौर से देखना चाह रहा था–'कौन हैं ये सब। लगता है, पश्चिम टोले के मजदूरों के बेटे हैं। शायद महुआ बीनने जा रहे हैं महुआ बारी में। वह कुछ देर तक अपरिचित निगाहों से उन्हें टुकुर–टुकुर ताकता रहा। फिर आगे बढ़, हाँक लगाकर उनसे कुछ बतियाना भी चाहा। मगर वे तो उसे अजीब नजरों से अकचका कर देखते रहे। फिर खिलखिलाते हुए नौ दो ग्यारह हो गये। उसे लगा जैसे उसकी खिल्ली उड़ाई जा रही हो।

'पाँव लागूँ भैया!' पीछे से आई आवाज, जब उसने मुड़कर देखा। भगेलू था, उसके साथ कुछ दिनों तक पढ़ा था रात में कुट्टी–छपाटी काटकर मवेशियों को खिलाता। सुबह गोबर– पानी करने के बाद भैंस को धोने गढ़हे में ले जाता। वहाँ से लौट स्कूल की तैयारी में जुट जाता। क्या पढ़ता–लिखता बेचारा! हाई स्कूल में जब लगतार चार साल तक फेल ही होता रह गया, तो घरवालों ने आजिज आकर उसकी पढ़ाई छुड़वा दी डंडों की मार पड़ी, थुक्का–फजीहत हुई सो अलग।

''क्या हालचाल है भगेलू?'' वह माहोल की तंद्रा भंग करता है। ''बस, ठीक ही है, भैया!'' भगेलू की मरियल आवाज उसके कानों में पड़ती है ।

''और सब संगी–साथी आजकल कहाँ हैं, भगेलू?'' वह जिज्ञासावश पुनः सवाल ठोंकता है।

''दिनेसर, बच्चाजी, गणेश जी, रमाशंकर सबके सब तो शहर में चले गये। भैया! रोजी–रोटी के जुगाड़ में कहीं–न–कहीं तो जाना ही पड़ता है। एक मेरे ही नसीब में नरक भोगना बदा था। खेती में दिन–रात खटो, खून–पसीना बहाओ, फिर भी खाने तक का ठिकाना नहीं। कभी बाढ़, कभी सूखा, तो कभी ओलावृष्टि। मौत का कुआँ है ई खेती।'' भगेलू रुआँसा हो अस्फुट स्वर में निराशा जाहिर करता है।

''सब अपनी–अपनी जगह परेशान है, भगेलू! कोई सुखी नहीं है। उसे दिलासा दिलाने की गरज से वह दार्शनिक–सा मुँह बनाकर कहता है।''

''भैया! शहर में कहीं मेरा भी जुगाड़ बैठा देते तो बड़ी मेहरबानी होती। आपका उपकार में जीवन भर नहीं भूलूँगा। भैया! मुझको इस नरक से उबार लीजिए।'' भगेलू की आँखों से आँसू छलछलाने लगे।

''जरा धीरज रख पगले! इस तरह पेशेंस खोओगे, तो कैसे काम चलेगा? अबकी बार जाकर मैं पूरी कोशिश करूँगा और जैसी खबर होगी, लिखूँगा।'' वह भगेलू को धैर्य बँधाने के लिहाज से कहता है। हालाँकि उसे बखूबी पता है कि उसके लिए वह कुछ भी नहीं कर पाएगा।

''अच्छा, भैया! चलता हूँ बधार की तरफ। फिर दुआर पर आऊँगा साँझ के वक्त।'' भगेलू हाथ जोड़ता है। वह सिर हिलाता है और भगेलू 'चौरासी' खेत की तरफ बढ़ जाता है।

बलेसर बाबा मठिया की तरफ से लौट रहे हैं। वह उनसे पिंड छुड़ाना चाह रहा है। लगेंगे बतियाने, तो उनकी बतकही द्रौपदी का चीर बन जाएगी। घर की बातें, गाँव की बातें, शहर की बातें, दुनिया–जहान की बातें, बस बातें ही बातें। वह पूरबवाली पगडंडी पकड़कर आगे बढ़ना चाहता है। तभी बाबा

टोक ही बैठते हैं–''अरे बबुआ! तनी हेनिओ सुनिह!'' आखिर वही हुआ, जिसकी उसे आशंका थी। हालचाल और कुशलक्षेम पूछने के बाद बलेसर बाबा असल बात पर आ गए।

''बबुआ! माई के मुअला में बाल–बच्चन के ना ले अइला हा?'' ''क्या करें बाबा! उतने लोगों को लाना, फिर वापिस ले जाना।

बच्चों की परीक्षा भी है। उस पर यात्रा की भयंकर परेशानी। उसने रुपये–पैसेवाली असल मुसीबत को जान–बूझकर छिपा लिया।

''आ एगो अउर बात सुननी हाँ, बबुआ! तोहार बाबूजी कहत रहन, माई के क्रिया–करम में कुछ ना दिहल हा?'' बाबा ने आखिर वही सवाल ठोंका, जिसका उसे डर था।

''बाबा! शहर में बाल–बच्चों को रखकर परवरिश करना, उनकी पढ़ाई–लिखाई का माकूल इंतजाम करना और मकान का किराया देना–बहुत आर्थिक तंगी में हूँ, बाबा!'' उसने महसूस किया, बाबा पर उसकी असमर्थता का कुछ भी असर नहीं हुआ।

''बियाह–मरन कवनो रोज थोड़े होला बबुआ!''

''बाबा, यह बात तो है ही, मगर हम भी लाचार हैं, वैसे हर माह कुछ–न–कुछ भेजता ही रहता हूँ।'' अचानक फोन से सूचना मिली। पैसे थे नहीं, जल्दबाजी में कोई व्यवस्था नहीं कर पाया। खैर, जो कर्ज लिया गया है, उसे सूद समेत मुझे ही तो चुकता करना होगा। अच्छा, बाबा! चलता हूँ, ट्ट्टी जाना है।'' वह जबरदस्ती बलेसर बाबा से पिंड छुड़ाकर, उनकी तरफ देखे बगैर ही आगे बढ़ गया।

कब मैदान हुआ, कब वापस लौटा, उसे पता नहीं चला। बलेसर की बातें बार–बार उसके दिमाग में घुसकर अपना दखल जमा लेती थीं और वह चाहकर भी उन्हें दिमाग से परे नहीं धकेल पाता था। मैं भी किसान का बेटा हूँ। बाबूजी का दर्द मैं समझ सकता हूँ, मगर मेरी परिस्थिति का क्या उन्हें जरा भी अहसास नहीं?

लौटते वक्त रास्ते में उससे और कई लोगों ने बातें की। दंड–प्रणाम, कुशलक्षेम के बाद फिर माँ की अंत्येष्टि क्रिया और रुपये–पैसे पर आकर बात टिक गयी। सबके खोद–खोदकर पूछने पर उसे लगा, जैसे सबके सब उसका मखौल उड़ा रहे हों। यहाँ कोई भी अपना नहीं, सबके सब हँसी उड़ानेवाले, सहानुभूति के नाम पर तीखा प्रहार करनेवाले। वह कहाँ आ गया है? उसका बरसों पहलेवाला गाँव कहाँ गया? वे लोग कहाँ गए? सबके साथ भाईचारा, एक–दूसरे के दुख–दर्द का हँसते–खेलते बँटवारा। उसे लगा जैसे वह अचानक एक ऐसे जंगल में चला आया हो, जहाँ चारों तरफ भेड़ियों का हुजूम हो। वे लोग उसे कोंच–कोंच कर मार डालेंगे।

कुल्ला–कलाली करके वह दुआर पर पड़ी हुई खटिया पर बैठ गया। बाबूजी नहा–धोकर रामायण पाठ कर रहे थे। उसने उनकी तंद्रा भंग की–'बाबूजी!'

''का बबुआ?'' वह उसकी तरफ टुकुर टुकुर देखने लगे।

''बाबूजी! मैंने आपसे पहले भी कहा था कि मैं वहाँ एक निजी कंपनी में महज पंद्रह हजार रुपये की किरानीगिरी करता हूँ। उसी में बाल–बच्चों को रखकर पढ़ाना–लिखाना, मकान का रेन्ट देना, सबकी परवरिश करना, यहाँ भी हर माह कुछ–न–कुछ भेजना। माँ के श्राद्ध में मैं जल्दबाजी में कुछ इंतजाम नहीं कर पाया। खैर, आपने खेत को बंधक रखकर रुपये लिये हैं, किसी ने मुफ्त में ही तो दिया नहीं। धीरे–धीरे चुकता कर दूँगा। मगर एक बात मेरी समझ में नहीं आती। इस बात को गाँव भर पटाने की क्या जरूरत थी?'' उसे लग रहा था जैसे उसके बदन पर पेट्रोल छिड़ककर किसी ने आग लगा दी हो और उसका अस्तित्व धू–धू कर जलने लगा हो।

''बबुआ, जिस आस–हुलास से तुझे तेरी माँ ने अपनी कोख से जनमाया था, उसपर तूने पानी फेर दिया। मैंने खेत ही रेहन नहीं रखा, यही समझो, मेरी माँ किसी के पास बंधक रख दी गई, मेरी बेटी!'' बाबूजी की आँखों में आँसू तैरने लगे।

''बाबूजी!'' वह बात काटकर बोला ।

''हाँ बबुआ! धरती माँ होती है, बेटी होती है। कोई अपनी माँ–बेटी को बेचना चाहेगा? बंधक रखेगा? इससे तो बेहतर होता, मैं खुद मर गया होता। अगर तू यहाँ नहीं आया होता, तो मुझे जरा भी दुख नहीं होता। मगर यहाँ खाली हाथ आकर तूने मेरी सारी इज्जत–प्रतिष्ठा खाक में मिला दी। अब मैं गाँव में कैसे मुँह दिखाऊँगा? हे भगवान! मुझे कब उठा रहे हैं?

''बाबूजी की आँखों से आँसू टपकने लगे, रामायण भीगने लगी। वह बाबूजी को फिर कुछ समझाने ही जा रहा था कि गाँव के दसेक लोगों को अपने पीछे खड़े देखकर अकचका गया। उनकी सवालिया आँखें उसे बार–बार घूर रही थीं। तमाशबीन से जुटे तमाम लोग अब दो भागों में विभक्त होकर तरह–तरह के बेतुके और तीखे सवालों के तीर छोड़ने लगे थे और वह एक असहाय परकटे पंछी की नाईं सबों की तरफ बस टुकुर–टुकुर ताके जा रहा था।

केदारनाथ सविता
पुलिस चौकी रोड
चिकाने टोला, मीरजापुर (यू.पी.)
मो.–9935685068

क्षणिकाएँ

बंधन–खींच लाई है मुझे
तुम्हारे पास
तुम्हारी चितवन
आया हूँ मैं
तोड़कर सारे बंधन
चाहो तो बाँध लो
तुम्हारे हाथ में है अभी
चिर स्नेह का बंधन।
जिन्दगी–मैं
गम
और तनहाई
देखो, जिन्दगी की
बारात आयी।

दुलहन–लज्जा के सींखचों में
बन्द हैं सारे शब्द
दरवाजे पर छटपटाती हैं
कोमल अनुभूतियाँ
काव्य–शब्दों की चाभी से
खुलते हैं
अनुभूतियों के द्वार
कल्पनाओं की कलियों से
बनते हैं
काव्य के हार।
अवसर–मेरी विपत्ति पर
खाकर तरस
अचानक एक रात
मेरे कमरे में
प्रकट हो गये भगवान,
बोले–
''मनुष्य!
तुम समझ नहीं पाये
मैंने तुम्हें दर्द और तन्हाई
इसलिए नहीं दिया
कि रोने लगो
मैंने तुम्हें दुख और कष्ट
इसलिए नहीं दिया
कि चिल्लाने लगो
ऐ मानव!
मैंने तुम्हें अवसर दिया है
कि कवि बन जाओ।''
जाड़े का दिन–दूध भरा गिलास है
जाड़े का दिन
जिसे बच्चा अभी
गटक जाएगा।

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303